घन-आनंद

शंभुप्रसाद बहुगुना एम्. ए., डिप. साइ.
लखनऊ

प्रकाशक
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद।

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी-साहित्य-प्रेस, प्रयाग।

करुण सौंदर्य के स्निग्ध कवि
श्री चन्द्र कुँवर बर्त्वाल
को
स्नेह सहित घन-आनंद
अर्पित

घनानद, मध्ययुग के कवियो में अपनी अनुभूति-जन्य विरह-वेदनाओं की मार्मिक व्यंजना के लिये प्रसिद्ध है। अभी, तक किसी भी पुस्तक मे इस कवि की प्रमाणिक जीवनी, कविता की गभीर आलोचना तथा चयनिका एकसाथ नहीं थी। ।इस अभाव की पूर्ति बहुगुना जी ने की है।

पुस्तक पाठको के सन्मुख रखते हुए हमें अत्यन्त हर्ष है।

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री
साहित्य भवन लि० प्रयाग।

वक्तव्य

घनानद के सवैयो को सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सुंदरी तिलक' मे प्रकाशित किया था। उसके बाद सन् १८७० मे घनानद के ११६ कवित्त और दोहों को उन्होंने सुजान-सतक नाम से प्रकाशित किया। सन् १८६७ मे काशी के हरि प्रकाश यन्त्रालय से रत्नाकर जी द्वारा सपादित प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। दूसरा सस्करण जिसमे कुछ और पद भी सम्मिलित हैं सन् १६२६ मे अमीरसिंह द्वारा सपादित होकर नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ। इसी का एक सक्षिप्त सस्करण भारतवासी प्रेस, दारागज प्रयाग से कुछ समय गये 'घनानद रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हुआ है। व्रजभारती के पहले वर्ष के चार अको मे श्री जवाहरलाल जी चतुर्वेदी ने आनदघन के ६५ पद प्रकाशित किये हैं (पहले अक मे १६ + दूसरे अक मे १६ + तीसरे मे १६ + चौथे मे १८ गेय पद हैं) पहले वर्ष के छठे अक मे उन्होंने बलदेव ग्राम निवासी 'श्री अहिवासी' के बम्बई से भेजे हुए दो पद तथा उनके पत्र का आशय प्रकाशित किया है कि अहिवासी जी दिल्ली वाले घनानंद की छाप 'घनआँनन्द' और राधा-प्रेमी नदगाँव के घनानद की छाप 'आँनदघन' बतलाकर कविता को प्रथक् किया जा सकता है। इस प्रकार 'व्रजभारती' मे ६७ पद प्रकाशित हो चुके हैं। सगीतराग कल्पद्रुम' भाग १, २, ३ मे तथा कीर्तनसग्रह, राग-रत्नाकर मे भी घनानद के कुछ पद प्रकाशित हुए हैं। लाला सीताराम के सेलेक्शस फ्रौम हिन्दी लिटरेचर मे सुजान-सागर के ही कुछ कवित्त और सवैये प्रकाशित हैं।

कवित्त-सवैयो और गेय पदो के अतिरिक्त यदि कोई रचना घनानंद की प्रकाशित हुई है तो वह है 'वियोग-वेली' जो कि ब्रिटिशम्यूजियम की प्रति के आधार पर 'विरहलीला' के नाम से १६०७ मे काशीप्रसाद जायसवाल ने नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित की थी। इसके अतिरिक्त घनानद की कोई रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। प्रस्तुत सग्रह मे अनेक कवित्त सवैये, 'प्रेम-पत्रिका' तथा अन्य लीलाओं के कवित्त सवैये पहली बार प्रकाश मे आ रहे हैं। वियोग-वेली (अथवा विरह वेली) भी पाठ भेद सहित

पहले समय आ रही है। जहाँ तक हो सका समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है छतरपुर दरबार में कहे जाने वाले बड़े पोथे के विषय में दरबार से पूछ ताछ की गई तो लाइब्रेरियन साहब ने उत्तर के पत्र में लिख भेजा "घनानद की कोई रचना अथवा ऐसा कोई ग्रंथ हमारे पुस्तकालय में नहीं हैं" डा० भवानीशंकर जी याज्ञिक के पुस्तकालय की सभी सामग्री उनके सौजन्य और गुरुवर डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल तथा श्री दीनदयाल जी गुप्त की कृपा से प्राप्त हुई, इन सज्जनों का आभारी हूँ।

कृतज्ञ हूँ गढ़वाल के प्रतिभा संपन्न कवि श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का जिनकी सत्कामना, प्रेरणा और वाणी मुझे सदैव उत्साहित करती रही है। "मध्य-युग के प्रेमी कवियों में घनानद से अधिक करुण स्वर किसी के नहीं हैं", एक दिन श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने कहा था और घनानंद पर लिखी अपनी ये पक्तियाँ सुनाई थीं।

"बस कर भी ब्रज मे प्रिय, वासना न गई
यह पुकार बार-बार माँग क्या रही?
वर्षा के मेघ देख गोवर्द्धन छूते
वाणी में तापस की तरलता नई?
आज यह हृदय पुकार उठा कौन अप्सरा?
आज कौन नयनों मे पिघली पवि-निष्ठुरा?
कवि, क्या यह मेघ विनय कान करेगा?
सचमुच उस आँगन में आँसू बरसेगा?
खिड़की के निकट फैल सावन-संध्या में
विरही का दुःख उससे सचमुच रोवेगा?
विसासी सुजान उसे सुनेगी अकेली
आनन के कुसुम भार से झुका हथेली?"

साथ ही घनानद का वह सवैया मेरे हाथ मे दिया था जिसमें वे मेघ से विनय करते हैं—

पर काजहि देह को धारि फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ
निधि-नीर सुधा की समान करौ, सब ही विधि सज्जनता सरसौ
घनआँनंद जीवनदायक हौ कछु मेरियौ पीर हिएँ परसौ
कबहूँ व विसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहिं लै बरसौ

इसे पढते-पढते मेरे सामने मेघदूत का यक्ष घूम गया। और मैने इस आनंद के घन कवि घनानद का अध्ययन शुरू किया। तब से जो कुछ पता चला उसी का लेखा प्रस्तुत घनानद है।

प्रस्तुत पुस्तक में घनानद की सभी उपलब्ध कविता नहीं रख ली गई है, किंतु चुन-चुन कर कुछ शीर्षको में अच्छे-अच्छे सुमन सजा दिये गये हैं। गेय पदों मे भी क्रम का ध्यान रक्खा गया है। प्रस्तुत पुस्तक को तैयार करने में जिन-जिन पुस्तकों, पत्रिकाओं, लेखो आदि का उपयोग किया गया है उन सभी का लेखा करना कठिन है, किंतु प्रधान-प्रधान की सूची इस प्रकार है—

(१) नागरी-प्रचारिणी-सभा की प्रकाशित खोज रिपोर्टें।
(२) श्री भवानी शकर जी याज्ञिक के सग्रहालय की हस्तलिखित पुस्तकें।
(३) श्री नवीनचन्द्र जी की वियोग-वेली की प्रति।
(४) कृष्णानंद व्यास का राग सागरोद्भव—।
(५) ब्रजनिधि-ग्रथावली।
(६) नागर-सम्मुचय।
(७) रसखान और घनानद।
(८) हिन्दी-साहित्य के इतिहास तथा 'शिवसिह-सरोज'।
(९) नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, हिन्दुस्तानी, सरस्वती, माधुरी, ब्रज-भारती आदि।
(१०) ब्रज-माधुरी-सार।
(११) कवि-कीर्तन।

क्रम इस ढग से पुस्तक मे रक्खा गया है कि घनानद की अतवृत्ति और काव्य-प्रेरणा के विषय मे एक निश्चित धारणा पाठको की हो जाय, साथ ही घनानद के काव्य का अंतःसौदर्य भी उनके सम्मोहन की वस्तु बन सके। घन-आनद की ओर हिन्दी-प्रेमियो का ध्यान जाने लगा है, यह गौरव की बात है; हमें आशा है शीघ्र ही इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के परिश्रम से घनानद की अधिक से अधिक रचनाएँ अच्छे ढग से प्रकाशित

होकर जनता के सम्मुख आवेगी और हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करेगी। पूर्ण-रूप से रचनाओं के सम्मुख आ जाने से पहिले की गई आलोचना अपूर्ण रहती है, यह सत्य है, किन्तु इस अपूर्णता से भी पूर्णता की ओर जाने में सहायता मिलती है, इसी विचार से यह पुस्तक लिखी गई है।

जीवन के सबंध में जो बातें इस पुस्तक में लिखी गईं हैं वह सब ठीक ही सिद्ध होंगी, यह मैं नहीं कहता, आगे चल कर हो सकता है स्वयं मुझे इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़े, किन्तु इस समय जो मेरी धारणा बनती चली जा रही है उसको जनता के सामने रखना मैं उचित समझता हूँ। अकाट्य प्रमाण जनश्रुतियो के पक्ष मे जब तक नहीं मिल जाते तब तक प्रचलित रूप में उन्हें मानने का जी, घनानंद की कविताओं को पढ़ने के बाद, मेरा नहीं करता। जिस दिन पुष्ट प्रमाण उनका समर्थन कर सकेंगे उस दिन सहर्ष अपनी प्रस्तुत धारणा पर फिर से विचार कर लूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक से कुछ भी लाभ घनानद के प्रेमियो तथा साहित्य के विद्यार्थियों का हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा और शीघ्र ही 'रसखान' को भी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करूँगा।

मोहन-भवन, २०६५ नज़रबाग, लखनऊ
अक्टूबर ८, १९४३ ई०, विजया-दशमी

शंभुप्रसाद बहुगुना

विषय-सूची

अध्ययन

चयनिका

दीपिका

घनानंद की जीवनी

घनानद की जीवनी हिन्दी के अनेक कवियों के जीवनवृत्त की भाँति न केवल अज्ञात है वरन् किवदतियों की एक मोटी तह उस पर जम गई है। जनश्रुति है कि घनानद बादशाह मुहम्मदशाह के दरबार मे बादशाह के व्यक्तिगत कर्मचारी थे और दरबार की नाचने-गाने वाली सुजानराय से उन्हे प्रेम था। घनानंद को गाने का भी शौक था किन्तु दरबार मे वे कभी भी न गाते थे। एक दिन इस बात की चर्चा चुगलखोरो ने बादशाह से की। बादशाह ने घनानद को गाने के लिए कहा किन्तु उन्होने गाया नहीं। किसी ने कहा ये ऐसे नही गायेंगे यदि सुजान बुलायी जाय और वह कह दे तो ये अवश्य गाने लगेगे। इस पर सुजान बुलाई गई। सुजान के सामने घनानद की सरस्वती खुल गई और वे मुक्तकठ से गाने लगे। बादशाह गाने से प्रसन्न हुए किन्तु इस व्यवहार से बहुत अप्रसन्न हुए और दरबार से उनका निष्काशन कर दिया गया। दुखी घनानद दिल्ली छोड कर जा रहे थे उन्हे आशा थी सभवत सुजान भी उनका साथ देगी किन्तु वह बेचारी विवश थी। लाचार घनानद खिन्न होकर वृन्दावन की ओर चल दिये। जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेमपूर्ण राधा-कृष्ण के चरणो की अनुरक्ति बन गई। मरते दम तक सुजान को वे नही भूल पाये। राधा-कृष्ण को उन्होने सुजान की स्मृति बना दिया और निरतर सम्मुख रहने पर भी सुजान के प्रेम मे आँसुओ के स्वरो मे गीत, कवित्त सवैये लिखते रहे। नादिरशाह के आक्रमण मे धन की खोज मे सिपाही मथुरा तक पहुँचे और इन्हे मार डाला। इस जनश्रुति को थोड़े ही शब्दो में वियोगी हरि ने अपने 'कवि-कीर्तन' मे पहले-पहल सवत् १९८० विक्रमीय मे इस प्रकार रक्खा—

(घनानद-कविता काल स० १७७७ वि०)

घनआनंद सुजान जान को रूप दिवानो।
वाही के रँग रँग्यो प्रेम फंदनि अरुझानो।
बादशाह को हुक्म पाय नहि गायो इक पद,
पै सुजान के कहे चाव सों गाये धुरपद।
बादसाह ने कोपि राज्य ते याहि निकार्‌यो।
वृंदावन में आय वेष वैष्णव को धार्‌यो।
प्यारे मीत सुजान सों नेह लगायो।
लगन-बान ते बिंध्यो बिरह-रस-मंत्र जगायो[1]।

---

[1] 'कविकीर्तन'—प्रथम संस्करण पृ० ३३, ३४

साथ ही फुटनोट मे लिखा है—सुजान एक वेश्या थी। विरक्त वैष्णव होने पर घनानंद जी ने 'सुजान' नाम को श्रीकृष्ण पर घटाया और अपने प्रत्येक छद मे 'सुजान' नाम जोड कर अपनी प्रेमपरता का पूर्ण परिचय दिया। 'वेप-वैष्णव को धारयो' पर नोट दिया है 'निंबार्क सप्रदाय के वैष्णव' विशेष वृत्तात जानने के लिए ब्रजमाधुरी सार देखने की बात लिखी है। 'ब्रजमाधुरी सार' में जीवनवृत्त के सबध मे विशेष बात यही है कि घनानद का जन्म सम्वत् १७४६ वि० के आस-पास माना है।

यह जनश्रुति कहाँ सुनी, विश्वसनीय है भी या नहीं इसकी कुछ चर्चा नही है, हो सकता है राधाचरण गोस्वामी (वि० स० १६१५–वि० स० १६८२) जैसे किसी सत महात्मा से वियोगी हरि ने यह कथा सुनी हो और उसे पद्यबद्ध करके प्रामाणिक मानने की इच्छा उनकी हुई हो।

इस जनश्रुति की विवेचना की चाह सभवत लाला भगवानदीन (संवत् १६२३—सवत १६८७) को पहले-पहल हुई और उन्होंने अपनी खोज शुरू की। अध्ययन मनन से जो पता चला उसे लक्ष्मी पत्रिका मे प्रकाशित किया। इस लेख में लाला जी ने बतलाया है कि—आनदघन का जन्म लगभग संवत् १७१५ के प्रतीत होता है। और मृत्यु संवत् १७६६ मे जान पड़ती है। ये दिल्ली के रहने वाले भटनागर कायस्थ थे। और फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। जनश्रुति इन्हे अबुलफजल का शिष्य भी बतलाती है। किसी छोटे ओहदे से बढते-बढते ये बादशाह मुहम्मदशाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) हो गये। जनश्रुति यह बतलाती है कि आनदघन को बचपन ही से रासलीला देखने का बड़ा शौक था। बहुधा महीनो तक रासमडली के व्यय का भार अपने ऊपर लेकर दिल्ली मे रासलीला करवाते थे और स्वय भी किसी लीला मे भाग लेते थे इससे इनको हिन्दी भाषा के पद सीखने और संगीत का व्यसन लगा। और आगे चल कर वह निपुणता दिखलाई जिसकी सराहना आज भी भाषाविज्ञ करते है। और अभी तक रासधारियो मे इनके पद अद्यावधि गाये जाते है। इस रास की भावना का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये श्रीकृष्ण की लीलाओ मे ही लीन रहने के लिये दरबार तथा गृहस्थी से नाता तोड वृन्दावन चले आये और वहाँ व्यासवश के किसी साधु से दीक्षा ले ये किसी उपासना मे दृढ और मग्न हो गये। प्रायः कहीं न कही वंसीवट के आसपास ही रहा करते थे और वहीं किसी वृक्ष के तले आसन जमाये ध्यान-मग्न कभी-कभी तो कई-कई दिन समाधि ही मे बिता देते, खाने पीने आदि की सुधि भी भूल जाते थे सुजानसागर ब्रजवास मे ही रचा गया।

वियोगी हरि जी के सतजनोचित विश्वास मे जो सुजान विद्यमान है उसका कहीं नाम भी विद्वान् दीन जी की खोज मे नही आने पाया विरक्ति का कारण उन्होने पूर्व संस्कारो में तथा रास-प्रेम मे ढूंढ निकाला है। साथ ही जन्म सवत् भी (१७४६ नही) १७१५ के आस-पास आ गया है। निबार्क सप्रदाय की भी चर्चा नहीं हुई है किन्तु दीक्षा, ध्यान, समाधि आदि से पाला नही छूटा है। मृत्यु १७६६ ही बतलायी है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जो खोज दीन जी ने की उसके आधारो का पता

भी वे देते तो अच्छा रहता। आधारो के न मिलने से सभी बाते पूरी तरह से सत्य नहीं मानी जा सकतीं। किन्तु सुजान की कथा के स्थान पर रासलीला-प्रेम अधिक समुचित कारण घनानद की काव्य प्रेरणा का जान पड़ता है। घनानद की कविता के अध्ययन तथा रासधारियो के बीच प्रचलित गानो से इस नतीजे पर सभवत दीन जी पहुँचे होगे। जन्म सवत् का आधार हो सकता है शिवसिह-सरोज रहा हो। जान पड़ता है 'शिवसिह-सरोज' के विवेचन के आधार पर—अर्थात् यह देख कर कि १७४६ मे बने कालिदास हजारा का जहाँ अधिक उपयोग कवियो की जीवनी तथा कविता का विवरण देते समय सेगर ने किया है वहाँ 'आनदघन दिल्ली वाले' के बारे मे नही लिखा है कि 'हजारा' मे इनकी कविता है। इस अनुमान से सभवत पं० रामचद्र शुक्ल तथा वियोगी हरि ने घनानद का जन्म सवत् १७४६ के आस-पास माना है।

घनानद के विषय मे जनश्रुति यही तक नही सीमित है। एक सज्जन ने महराज सूरजमल के यहाँ देव तथा घनानंद का वादविवाद भी इस बात पर करवाया है कि किस की कविता बढिया है। घनानद से उत्तर दिलवाया गया है 'आप दूसरो पर बीती कहते है मै आप बीती कहता हूँ'।[1] घनानद और देव चाहे कभी मिले हो न मिले हो किंतु दोनो कवियो की कविता की बड़ी सुन्दर आलोचना इस कथन मे की गई है।

जगन्नाथदास रत्नाकर (वि० स० १९२३—१९८९) ने भी घनानद के विषय मे कुछ खोज की थी। उसके अनुसार घनानद बुलदशहर के पास के रहने वाले थे।

राधाकृष्णदास (वि० स० १९२२ से वि० स० १९६४) जी ने नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका मे नागरीदास जी की जीवनी पर एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होने किसनगढ के जयलाल कवि के पत्र का हवाला देते हुए लिखा है—

"सवत् १८१४ (सन् १७५७ ई०) मे शाहआलम सानी के समय मे अहमद दुर्रानी ने मथुरा मे कत्लेआम किया था। इस विपय मे कवीश्वर जयलाल जी ने मुझे यह लिखा है—'कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ रूपनगर मे गुप्त आ पहुँची थी, नागरीदास जी के छोटे भाई वहादुरसिह जी और नागरीदास जी के पुत्र सरदारसिह जी ने इनको अर्जी लिखी थी कि कुटुम्बयात्रा के लिए यहाँ अवश्य पधारे। तव इस धोखादई से यहाँ आ गये थे फिर छ महीने रह कर पीछे वृंदावन ही पधार गये। सवत् १८२० की भादव सुदी ३ को वृदावन ही मे परलोक निवासी हुए।" इसके पूर्व राधाकृष्णदास जी ने अपने लेख मे लिखा है 'हमारे यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन चित्र है जिसमे नागरीदास और घनानद जी एक साथ विराजते है।' उसी लेख मे आगे चल कर राधाकृष्णदास जी ने लिखा है—"सवत् १८०४ (सन्

---

[1] देखिये, माधुरी वर्ष ३०१ कार्तिक वि० सं० १९८१ संख्या (सन् १९२४ ई०) मे श्री भवानीशङ्कर जी याज्ञिक के लेख पर पंडित मदनलाल जी मिश्र की टिप्पणी, पृष्ठ ५३४

१७४७) में जब कि मुहम्मदशाह तख्त पर थे दिल्ली पर पठानो ने चढाई की। बाद-
शाह ने फर्मान भेजा, राजसिंह जाने को प्रस्तुत हुए। सावंतसिंह ने कहा, हमें जाने
दीजिये, और अपने पुत्र सरदारसिंह सहित दिल्ली गये। बादशाह ने लड़ाई में नहीं
भेजा। सभवतः इसी समय आनदघन से मित्रता हुई होगी। सन् १७४८ (=सं०
१८०५) में मुहम्मदशाह मर गये। सवत् १८१३ (=सन् १७५६ ई०) के फाल्गुन मे
नागरीदास (सवत् १७५६ वि० से सवत् १८२० तक) ने कुटुम्ब-यात्रा के निमित्त
प्रस्थान किया। उस समय उनके साथ आनंदघन जी भी थे परतु जयपुर से ही
लौट आये।"

इसी प्रकार नित्यानंद गोस्वामी के कथन के आधार पर अपने लेख 'जैनमर्मी
आनदघन' मे घनानद के दिल्ली से आकर वृंदावन में नागरीदास जी के साथ रहने
की बात लिखी है।

यदि राधाकृष्णदास जी और जयलाल कवि की बातो को आधार माना जाय
तो घनानद की मृत्यु अहमदशाह दुर्रानी के मथुरा के कत्लेआम, जिसका भयावह
चित्र इतिहासो मे खींचा गया है, के समय अर्थात् सन् १७५७ ई० (=सं० १८१४
विक्रमीय) के आस-पास होनी चाहिए। नादिरशाह के समय में मथुरा पर भी
आक्रमण हुआ हो ऐसा उल्लेख किसी भी इतिहास में अब तक नहीं मिलता है।

राधाकृष्णदास जी के लेख में घनानद के विषय में जो बाते कही गई है
उनका पहला आधार वह चित्र है जिसका उल्लेख उन्होंने किया है और दूसरा जय-
लाल जी से प्राप्त हुई बाते। चित्र, जब तक प्राप्त नहीं हो गया, किसी विद्वान के द्वारा
उसकी परीक्षा नहीं हो गई, तब तक कल्पना-चित्र मात्र है। किंतु जयलाल जी का
कथन भी क्या पूर्णरूप से प्रामाणिक माना जा सकता है? इसकी भी परीक्षा कर ले।

जयलाल जी ने 'नागरसमुच्चय'[1] के साथ छपे 'छप्पनभोगचन्द्रिका'
(रचनाकाल वि० स० १६४७=सन् १८६०) में तीन स्थलो (पृष्ठ १५, पृष्ठ २३ तथा
पृष्ठ २५) पर घनानद का उल्लेख प्रसगवश इस प्रकार किया है :—

१

(नवधा भक्ति वर्नन की भक्तिपंचाशिका—तत्रादौ गुरुशरण हरिशरण लक्षणम्)

छप्पय

सुनि सुबोधिनी सहित भागवत भाष्य श्रवन किय।
पुष्टिमार्ग सिद्धांत समझि सुनि सुनि हिय भर लिय।

---

[1] कृष्णगढ़ के राजपंडित श्रीधर के पुत्र किसनलाल गौड सलेमाबाद
निवासी ने नागरसमुच्चय जयलाल कवि से संशोधित करवा कर संवत् १६५५
(सन् १८६८ ई०) में ज्ञानसागर यंत्रालय बम्बई से प्रकाशित करवाया था।

आनन्दघन हरिदास आदि संतन वच सुनि सुनि ।
धमारादि मे कही वहैं नहि कही सु शुक मुनि ।
हरिलीला सुनि प्रेमवश दृग सजल बचन गद्‌गद धरिय ।
श्रीमन्नृत्य गुपाल की श्रवनभक्तिनागर करिय ॥७।१। पृ० १५

२

(अथ मध्यम प्रेम उदाहरन महाराज श्री नागरीदास जी मे)

छप्पय

जाति पाति कुल नेम राज तजि भो ब्रजबासी ।
मोहन मनु मुख जाप राधका नाम उपासी ।
करि अनुभव पुनि वर्तमान लीलेन प्रकासी ।
तिहि प्रभाव बढ़ि भाव लगन की भई उजासी ।
हरि रसानंद की प्राप्ति कौ प्रेमा पंथ प्रवेश तैं ।
समय जन्य सब ज्ञान कौं जब भूले प्रेमावेश तैं । ४१
अंकुर रूप सुभयो प्रेम लघु जबै हीय मधि ।
हरिगुन चर्चा कहत सुनत संचारी विधि मधि ।
आनंदघन हरिदास आदि सौ संत सभा मधि ।
प्रकट भये अनुभाव सवैया के जु यथा विधि ।
ब्रज वृंदावन बास बसि वर भक्त तक्त शोभा सु लहि ।
श्रीमन्नृत्य गुपाल को नृग नागर मध्यम प्रेम गहि ॥४२॥ पृ० २३

३

(अथ सतसंगति महिमा उदाहरण श्री नागरीदास जी मे)

छप्पय

विप्रनि सौं सुनि वेद भागवत-अर्थं सुधार्‌यो ।
हरीदास हितमान कही सो ही अनुसार्‌यो ।
मुरलिदास अरु बलिदास सौ समय गुजार्‌यो ।
आनंदघन को संग करत तन मन कौ वार्‌यो ।
नर्तित गुपाल मिलि जान यौ सतसंगति नागर करिय ।
गो पद समान सुख मान कैं भवसागर कौ लहि तरिय ॥१०।पृ० २५

संवत् १६४७ (=सन् १८६० ई०) में लिखी छप्पनभोगचन्द्रिका मे नागरीदास-हरिदास, आनंदघन के सत्सग मे दिखाये गये है, और बतलाया गया है कि

'आनदघन को संग करत तन मन कौं वारयो'। किन्तु विचित्र उलझन तब सामने आती है जब नागरीदास की रचनाओ में हरिदास का तो बार-बार नाम मिलता है किन्तु आनंदघन का नाम कहीं भी नहीं पाया जाता। यदि प्रसिद्ध नागरीदास की ऐसी मित्रता आनदघन से होती, जिसके लिए वे तन-मन वार सकते है तो निश्चय ही उनकी रचनाओ मे आनदघन का अवश्य उल्लेख मिलता। उल्लेख न मिलना संदेह उत्पन्न करता है और सूचित करता है कि आनदघन तथा प्रसिद्ध नागरीदास का कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जिन हरिदास का उल्लेख नागरीदास की रचनाओ मे है वे कौन हरिदास है कहना कठिन है। प्रसिद्ध स्वामी हरिदास वे तभी हो सकते है जब उन रचनाओ को जिनमे हरिदास का यश गाया है दूसरे नागरीदास जिनका जन्म सवत् १६०० के लगभग हुआ था और जो स्वामी हरिदास जी की शिष्य-परम्परा मे हुए है की मान लिया जाय। जयलाल ने यदि किसी आधार पर भ्रम खाया है और कोई लिखित प्रमाण उन्हे कही नागरीदास, आनदघन तथा हरिदास के सत्सग का मिला है, तो वे नागरीदास प्रसिद्ध नागरीदास रहे हो ऐसा कम सभव है। आगे चलकर घनानद के समय के विषय में विचार करने पर यह बात समझ मे आ सकती है।

अब तक जो कुछ बाते ऊपर कही गई है उनमे यह देखने की बात है कि उन सब का लेख सवत् १९३६ के बाद का है। और अधिकांश मे मुहम्मदशाह के यहाँ घनानद के रहने तथा नादिरशाही मे घनानद के मारे जाने का उल्लेख है। यह हम देख चुके है कि प्रसिद्ध नागरीदास के साथ यदि घनानद ब्रज में रहे है तो नादिर-शाही में नही मरे वरन् अहम्मद दुर्रानी के मथुरा के कत्लेआम में उनकी मृत्यु सन् १७५७ के आस-पास होनी चाहिए, किन्तु इस दिशा मे हम तब बढ सकते है जब एक बार पहले मथुरा की बर्बादी, जो नादिरशाह के आक्रमण के ही आस-पास हुई, से घनानद की मृत्यु का सम्बन्ध किम्वदंती के आधार पर सत्य मान ले और साथ ही यह भी सत्य मान ले कि प्रसिद्ध नागरीदास और घनानंद ब्रज मे साथ रहे थे। बिना इन बातो को प्रामाणिक माने न तो घनानद का मृत्यु काल सन् १७३९ के ही आस-पास माना जा सकता और न सन् १७५७ ई० के ही। क्यो ? इसका कारण अभी आगे चल कर हम बतलाते है।

अभी हमने ऊपर कहा है कि इन सब किमूवदतियो का लेखा सम्वत् १९३६ (=सन् १८७९) अथवा आसानी के लिए कहे तो सन् १८८० के बाद हुआ है। इससे पहले घनानद के विषय मे प्रचलित किम्वदन्ती का लेखा रीवां नरेश रघुराजसिह (सवत् १८८०=सन् १९३६ ई०) ने अपनी 'भक्तमाला' मे किया है। उल्लेख इस प्रकार है—

एक भक्त का पुनि कहौ, घनआँनँद इतिहास।
घनआँनँद है नाम जिन, सुनत हरत भव त्रास॥

मथुरापुरी मलेच्छन घेरे। लाखों यमन खडे चहुँ फेरे।
कारण तासु सुनौं अब सोई। दिल्ली मे शहिजादा कोई।

एक समय मधुपुरी सिधायो। सबै मथुरियन हास बढ़ायो।
पनिही को रचि कै यक माला। डार्यो शहिजादा के भाला।
सो प्रकोपि निज कटक बोलायो। चहुँकित मथुरापुरी घेरायो।
दीन्ह्यो हुकुम नगर मँह जेते। अब बचि जायँ जियत नहिं तेते।
मारन लगे मलेच्छ प्रचारी। बचे न माथुर भटहु भिखारी।
घनआनँद वंशीवट पाहीं। बैठे रहे भावना माँहीं।
राधा माधव के मधि रासा। सखी रूप छवि पीवन आशा।
हाथे लीन्हे रहे मुखारी। तेहि चण में भावना पसारी।
सोइ मुखारी कर मे लीन्हे। दिन रजनी बिताय सब दीन्हे।
सोइ भावना मँह गिरधारी। बीरी दीन्ह्यो पाणि पसारी।

दोहा—सोइ बीरी मुख मे लियो, लगे मुरावन सोय।
सोइ बीरी को राग मुख, प्रगट लख्यो सब कोय।

मुख मे भरि आयो जब बीरा। तबहि ध्यान छोड्यो मतिधीरा।
तेह अवसर मलेच्छ तहँ आई। मारे खड्ग शीश महँ धाई।
उदकि गयो सो खड्ग न काट्यो। तब पुनि मारि ताहि अति डाट्यो।
तदपि कटी नहिं तिनकी देही। तब घनऑनँद कृष्ण सनेही।
कही पुकारि कृष्ण सों बानी। यह तै कौन रीति अब ठानी।
मोको भूरि भार है देहू। यत्न कियो छूटै नहिं केहू।
कौन हेतु राखत संसारा। क्यों न बोलावै नन्दकुमारा।
यदपि तजन तनु यत्नहु लाग्यो। तदपि न तै उधार अनुराग्यो।
कह्यो यमन कहँ पुनि गोहराई। अबकी मारहु शिर कटि जाई।
हन्यो यवन अस कटि गो शीशा। सब यमनन विमान नभ दीशा।
घनऑनँद तन कढ्यो न लोहू। सो चरित्र लखि पर्‌यो न कोहू।
ब्रज मे विदित कथा यह सारी। संचेपहि इत लिख्यो बिचारी।
घनऑनँद के विपुल कवित्ता। अब लों हरत कविन के चित्ता।
घनऑनँद की कथा अनेका। ब्रज मे विदित अहै सविवेका।
जाहि सुनन को होय हुलासा। करैं सो जाय विमल ब्रजवासा।

यह घनऑनँद की कथा, वर्णन कियो समास।
औरहु भक्तन की कथा, नेसुक करौ प्रकाश[1]॥

---

[1] रघुराजसिंह 'भक्तमाला' चतुर्थ संस्करण (संवत् १९७१) पृ० ९९१-९२

रघुराजसिंह साफ लिख रहे है ब्रज मे विख्यात कथा जो कि घनानद का इतिहास है विचार करके यहाँ सक्षेप मे लिख रहा हूँ। इस विचार कर लिखे लेख से इतनी बातो का पता चलता है कि घनानंद राधामाधव की सखी भावना के भक्त थे। जीवन उनके लिए भार हो रहा था। विरह की तीव्रता से शरीर का बंधन असह्य था वे उससे मुक्त होकर असीम प्रेम के समुद्र मे लीन होने की चाह से 'कृष्ण से प्रार्थना करते हैं और इसी समय ऐसा अवसर भी उपस्थित हो जाता है कि किसी कुपित बादशाह जादे अथवा बादशाह के कर्मचारी की सेना मथुरावासियो पर कहर ढाती हुई वहाँ भी पहुँचती है जहाँ घनानंद ध्यान मग्न थे। घनानद की मृत्यु इन्हीं के हाथ हुई।

इस घटना की कब सम्भावना हो सकती है, इसका पता लगाने के लिए सूक्ष्म रीति से इतिहास की शरण जाना आवश्यक है। रघुराजसिंह ने मथुरा के म्लेच्छो से घिरने का कारण धन का लोभ नही वरन् असह्य अपमान का बदला चुकाने की भावना को बतलाया है। शाहजादे अथवा राजकर्मचारी के सिर पर मथुरा निवासियो ने जूतियो की माला डाली थी, क्या केवल हँसी मजाक के लिये ही ? यदि हँसी मजाक इस प्रकार का सभव हो सकता है तो शायद होली के अवसर पर ही। इसलिए इस घटना को होली के अवसर पर घटना चाहिए। किन्तु होली के अवसर पर भी शाहजादे अथवा शाही कर्मचारी के साथ इस प्रकार का व्यवहार तब तक नहीं कोई कर सकता जब तक या तो उस कर्मचारी से लोग चिढे हुए न हो अथवा बादशाह के जुर्मों के बढ जाने से बादशाहत खोखली, निर्बल और प्रजा राजसत्ता की उपेक्षा करने की सीमा तक सबल न हो गई हो। राजसत्ता मुहम्मदशाह के समय में निर्बल से निर्बल हो गई थी। दूर नही दिल्ली मे ही शाहजादो और शाही कर्मचारियो की बेइज्जती कभी-कभी खुले आम हो जाती थी और वे देखते ही रह जाते थे। किन्तु उक्त कहानी में शाही कर्मचारी चुप नही रहता उसका क्रोध उबल पडता है उसकी फौज मथुरा को घेर लेती है प्रतिशोध की भावना कुहराम मचा देती है। अस्तु राजसत्ता इस घटना के समय निर्बल नहीं मानी जा सकती। रघुराजसिंह के कथन के आधार पर इस भीषण काड का कर्ता हम दुर्रानी अथवा नादिरशाह को नही मान सकते।

तब यह घटना कब घट सकती है ? दुर्रानी के आक्रमण के बाद घनानद की मृत्यु हुई है ऐसा कोई नही मानता। अस्तु दुर्रानी और मुहम्मदशाह रँगीले के समय के पूर्व ही यह घटना घटनी चाहिए।

मुहम्मदशाह के पूर्व ऐसा समय जब कि प्रजा, कर्मचारी तथा बादशाह से उग्ररूप से चिढी हुई किन्तु दिल मसोसे हो, औरङ्गजेब के शासन-काल मे था। औरङ्गजेब ने अपने इस्लामी जोश के कारण हिन्दुओ के सभी तीर्थ-स्थानो पर विशेष-कर मथुरा पर जो जुल्म ढाया वह किसी नादिरशाही से कम नहीं था। औरगजेब का बड़ा भाई दाराशिकोह उदार हृदय व्यक्ति था। राज्य का वास्तविक हकदार दारा विद्यानुरागी था। इस्लाम की शिक्षा यदि उसने सरमद से पाई थी तो वेदांत की

शिक्षा लालदास बाबा से। बाइबल के पुराने और नये अहदनामों का मनन तथा उपनिषदों का गहरा अनुशीलन उसने किया था। हिन्दुओं के कई मन्दिरों को उसने दान दिये थे। मथुरा के मन्दिरों को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। महत्वाकांक्षी औरङ्गजेब के लिए यह सब असह्य था। दारा से उसे द्वेष था। दारा को सजा देने तथा हिन्दुओं को नष्ट करने के लिए वह दिल्ली से आगरे तक आया था। शाहजहाँ को लिखे अपने एक पत्र मे उसने यह बात स्वीकारी है। औरङ्गजेब लिखता है, "मैंने आगरे की ओर इसलिए प्रयाण नही किया था कि राजगद्दी को सॅभालूॅ। मेरा उद्देश्य तो दारा की अनधिकार चेष्टा का, इस्लाम के त्याग का और सारे राज्य मे मूर्ति-पूजा के दौरदौरे का नाश करना था[1]।" सन् १६६८ ई० मे औरङ्गजेब ने देश भर के तीर्थों पर स्नान के मेले बन्द कर दिये। धीरे-धीरे होली और दिवाली को भी मुमानियत हो गई। यदि कोई इन त्योहारो को मनाना ही चाहे तो, वह बाजार से बाहर मना सकता है। शाहजहाॅ को (१० जून) १६५८ ई० मे कैद कर दिया गया था, १६६६ मे शाहजहाॅ की मृत्यु हुई थी। इसलिए यह असम्भव नही इस बीच ही दारा का पीछा करते समय मथुरा मे स्वय औरङ्गजेब के साथ वह व्यवहार हुआ हो जिस का उल्लेख रघुराजसिह ने 'घनानद की कथा प्रसङ्ग मे एक शाहजादा कह कर किया है। दारा की मृत्यु सन् १६५६ मे हुई। इस समय की होली को औरङ्गजेब भूल न सका होगा इसलिए आगे चल कर होली की प्रथा ही बन्द करवा दी गई। १६५६ ई० मे बनारस मे नये मन्दिरो का बनाना रोका गया था किन्तु सन् १६६६ ई० में देश भर के नये पुराने मन्दिरो को मिटा देने का, फरमान निकला। सोमनाथ का मन्दिर, काशी विश्वनाथ का मन्दिर मिट्टी मे मिला दिया गया। मथुरा के केशवराय का मदिर एक अचम्भे की चीज थी। वीरसिंह बुन्देला ने ३३ लाख रुपया खर्च करके इस मन्दिर को बनवाया था। औरङ्गजेब ने उस मन्दिर को सन १६६० मे गिरवा कर उसके स्थान पर मस्जिद खडी करवा दी। उस समय का इतिहास लेखक लिखता है कि इस मन्दिर के ध्वस ने हिन्दू राजाओ की पीठ तोड दी। मूर्तियाॅ सोने चाॅदी और जवाहिरात से जडी हुई थी। इन सब को आगरे लाकर जहाॅनारा की मसजिद की सीढियो के नीचे दबा दिया गया, ताकि हरेक जाने आने वाले के पाँव के नीचे कुचली जा सके। मथुरा पर औरङ्गजेव का कोप इतने मे ही शात नहीं हुआ। यह नगरी हिन्दुओ का विख्यात तीर्थ होने से कट्टर मुसलमानो के लिए अत्यन्त दु खदायिनी थी। उसके विशाल मन्दिरो के गगन-भेदी कलश आगरे के किले से दिखाई देते थे। दिल्ली से आगरे जाते हुए रास्ते मे यह रोडा अटकता था। औरङ्गजेव को मालूम हुआ कि दारा शिकोह ने पत्थर की एक रविश मदिर को भेट की थी। इस पर सन् १६७० मे

---

[1] इन्द्र विद्यावाचस्पति—मुगलसाम्राज्य का क्षय और उसके कारण। पृष्ठ २२६ भाग १-२

उसने हुक्म दिया कि न केवल मन्दिरों को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय, मथुरा शहर को उजाड़ कर उसकी जगह इस्लामाबाद बसाया जाय[१]।" मथुरा पर इस शनि दृष्टि का कारण जहाँ, दारा से उसका सम्बन्ध तथा औरङ्गजेब का इस्लामी जोश था वहाँ संभवतः उपरोक्त घटना भी हो सकती है। यदि वह औरङ्गजेब के ही साथ घटी हो तो ठीक है अन्यथा औरङ्गजेब के चरित्र-भ्रष्ट मथुरा के मुसलमान अत्याचारी फौजदारों, मुर्शिद कुलीखाँ तुर्कमान अथवा अबुलनबी खाँ के साथ भी घट सकती है। इनके पाशविक अत्याचारों का प्रतिशोध जूते की माला पहिना कर मथुरा-वासियों ने किया हो यह असम्भव नहीं। कट्टर मज़हबी अबुल खाँ सन् १६६० में मथुरा का शासक नियुक्त हुआ था। पहला काम जो उसने किया वह मथुरा के मन्दिरों—जिनमें केशवराय का मन्दिर भी था—को तुडवा कर उनके स्थान पर मसजिदें बनवाने का था[१]। अबुलखाँ से पहले मुर्शिद कुली खाँ तुर्कमान बहुत समय तक मथुरा का फौजदार रहा। वह जिस किसी गाँव में जाता, वहाँ की सुन्दर स्त्रियों को अपने हरम में डाल लेता। 'मसीरुल उमरा' नाम की किताब में उसके बारे में लिखा है—

"कृष्ण के जन्म-समय पर मथुरा से जमना के दूसरे पार गोवर्धन पर हिन्दू पुरुषों और स्त्रियों का भारी जमाव होता है। खान धोती पहिन कर और माथे पर तिलक लगा कर हिन्दू की सूरत में वहाँ घूमा करता। जहाँ उसने किसी चाँद को लजाने वाली खूबसूरत औरत को देखा कि वह बाघ की तरह लपका और पहले से जमना में खडी हुई नौका पर बैठ कर आगरे की ओर भाग गया। औरत के रिश्तेदार शर्म के मारे प्रकट नही करते थे कि उनके साथ क्या हुआ।"

ऐसे अत्याचारी कर्मचारियों के प्रति उग्र से उग्र भावना प्रतिशोध की जनता के हृदय मे छिपी रहती है और मौका आने पर उभर उठती है। संभवतः मुहम्मद कुलीखाँ के समय ही मथुरा की घटना घटी हो। किन्तु यह भी असभव नहीं कि वह अबुल नबी खाँ अथवा स्वयं औरगजेब मे से किसी के पर बीती हो। जो हो, घटना सन् १६६० के आस-पास घट सकती है और इसी में संभवत घनानद की मृत्यु हुई होगी।

रघुराजसिंह से पहले भी घनानद की (जीवनी अथवा) कथा सभवतः किसी ने लिखी होगी किन्तु वे लिपिबद्ध कथाएँ अज्ञात के गर्भ में न जाने कहाँ छिपी हैं।

कवित्त और सवैये घनानन्द के समय से ही संग्रहीत होने लग गये होंगे, किंतु ऐसे सभी संग्रह भी लिपिकाल सहित जब तक नहीं प्राप्त हो जाते तब तक अधिक आगे दृढता के साथ नही बढा जा सकता। रघुराजसिंह से पहले निश्चित तिथि के सग्रहों मे यदि घनानन्द का नाम कहीं प्रकाश में आया है तो ब्रजनिधि

---

[१]मुगलसाम्राज्य का क्षय और उसके कारण; भाग पहला दूसरा, पृष्ठ २४३, २४४ और पृष्ठ २७१-७२

(सवत् १८२१ = ४१६ ई० से सवत् १८८० = १८०३ ई०) के कविता सग्रहो में। व्रजनिधि ग्रथावली मे तीन पद आनन्दघन के पाये जाते है इससे यह निश्चित है कि सन् १७६४ से पहले आनन्दघन के गेय पद दूर-दूर तक फैल चुके थे। ऐसी अवस्था मे घनान्द का समय व्रजनिधि से काफी पहले होना चाहिये। न कि इतना निकट जितना सन् १७५८ मे आनन्दघन की मृत्यु मान लेने से वह आ जाता है।

नागरी-प्रचारिणी सभा की सन् १६१७ १८-१६ ई० की खोज रिपोर्ट मे आनन्दघन की एक रचना प्रीतिपावस प्राप्त हुई है। इसका रचना-काल यदि खोज रिपोर्ट मे सवत् १६५८ ठीक दिया गया है तो घनानन्द के समय का निश्चय वहुत कुछ हद तक सरल हो जाता है। ऊपर जिस ढङ्ग से हम देखते चले आ रहे है उसमे सवत् १६५८ मे 'प्रीतिपावस' आनदघन रच सकते है। किन्तु यदि सवत् १७१५ या सवत् १७४६ के आस पास उनका जन्म माना जाय जैसा कि साधारण रीति से लोग मानते चले आये है तो 'प्रीतिपावस' को घनानद की रचनाओं से अलग कर देना होगा। किन्तु रचना मे आनंदघन की छाप विलकुल स्पष्ट है शैली भी ऐसी नहीं है कि उसे एकदम किसी दूसरे ही कवि की रचना मान ले। खींचातानी करके कोई चाहे तो इस रचना को भी मुहम्मदशाह के समय मे ला सकता है। ऐसा करने वाला व्यक्ति यही कह सकता है कि उक्त रचना का समय विक्रम सवत् मे नही है वरन् शक संवत् मे है और ईसवी सन् मे वह १७३४ ई० निकल आता है। किन्तु यह भी देख लेना चाहिए कि विक्रम सवत् जितना प्रचलित रहा है उतना शक सवत् नहीं, फिर यह भी विचार करना होगा कि कहा कहाँ शक सवत् अधिक प्रचार मे रहा है। उक्त सवत् के विक्रम होने मे सन्देह नहीं है। यदि 'प्रीतिपावस' आनदघन की रचना है तो वह आरंभिक रचना हो सकती है क्योंकि उसकी शैली आरभिक काल की सी जान पड़ती है। सामान्य रीति से यदि यौवनकाल की भी रचना इसे मान लिया जाय तो घनानद का जन्म सवत् १६३० (= १५७३ ई०) के लगभग मान सकते है। इस प्रकार उनका जीवन-काल सवत् १६३० (सन १५७३ ई०) से सवत् १७१७ (सन १६६०) तक माना जा सकता है[1]।

यदि यह समय (सन् १५७३ से सन् १६६० तक) घनानद का जीवनकाल है तो वे अबुलफजल के शिष्य हो सकते है, जनश्रुति सत्य निकल सकती है। अबुलफजल का समय सन् १५५१ (सवत् १६०८) से सन् १६०२ (संवत् १६५६) तक है। अबुल-फजल के अवसान के समय घनानद २६-३० वर्ष के यदि रहे तो सन् १५६० के आस

---

[1] मारवाड़ के इतिहास मे भी विशेश्वरनाथ रेऊ ने महाराज गजसिंह (सन् १५६५-१६३८ ई०) के वनाये हुए स्थानों में आनंदघन जी के मंदिर का भी उल्लेख किया है। असंभव नही घनानंद से इस मन्दिर का कुछ सम्बन्ध हो।

पास वे कभी भी अबुलफजल से फारसी सीख सकते है। किन्तु इस कथन से हमारा यह अभिप्राय नही है कि घनानद अबुलफजल के शिष्य थे ही।

कोकसार (भाषा) अथवा कोकमञ्जरी की गिनती भी घनानंद की रचनाओं में की जाती है। खोज में आनदघन या घनानंद के नाम के किसी कवि की कोकसार रचना प्राप्त नहीं हुई। आनंद कवि की रची कोकसार भाषा की विक्रम सवत् १७६१ की प्रतिलिपि की हुई रचना का उल्लेख खोज रिपोर्ट में है। डा० हीरालाल ने आनंद कवि का काल्पनिक नाम माना है और बाबू श्यामसुन्दरदास ने घनानद से अलग इस कवि को जाना है। कोकसार (भाषा, अथवा कोकमञ्जरी) को देख कर निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि यह रचना कहाँ की गई और आनद कवि आनदघन या घनानद हो सकते है। अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए सौगन्ध खाने की प्रवृत्ति कोकसार के कवि में इतनी अधिक है कि हमे विश्वास सा होने लगता है कि आनद अलग व्यक्ति है। और सभवतः हो भी। संवत् १७७० की प्रतिलिपि की हुई कोकमञ्जरी [जो कि आनंद की कोकसार (भाषा) ही है] की एक प्रति में कवि का परिचय इस प्रकार मिलता है—

> कायथकुल आनंद कवि, बासी कोट हिसार।
> कोककला सब चूरि कै, जिन यह कियौ विचार[1] ॥

'सुजानसागर' में एक सवैये मे कोक का उल्लेख घनानद ने किया है—

तरुनाई पै कोक पढ़ै सुघराई सिखावति है रसिकाइ रसै ॥ पृष्ठ १२३ सं० २४०

यदि घनानंद ने कभी कोक की रचना आनद नाम से की हो और वह यही कोकमञ्जरी निकले तो घनानद के जन्मस्थान का भी पता उनके समय के साथ-साथ चल जाता है।

लाभविजय (सन् १६१५–सन् १६७५ ई०) अथवा जैनमर्मी आनंदघन को राधाकृष्ण प्रेमी घनानंद अथवा आनंदघन से मिला देना उचित नही। वे नितांत भिन्न व्यक्ति है। विचार-धाराओं में सम्पर्क-विनिमय से साम्य आ जाना एक मामूली सी बात है।

---

[1] इसके बाद रचनाकाल दिया है। दोनों ओर की स्याही चिपक जाने से वह पढ़ा नहीं जाता किन्तु 'रति बसंत संवत् सरस, सोलहा सै' इतना अंश स्पष्ट है, जिससे प्रकट है कि कोकमञ्जरी अथवा कोकसार भाषा आनंद कवि की १७ वीं विक्रमीय शताब्दी की रचना है।

घनानंद की काव्य-प्रेरणा

अथवा

सुजान का विवेचन

घनानद की रचनाओ को देख कर साधारण पाठक भ्रम मे पड जाता है कि उसमे आने वाला सुजान, जान, घन, घनआनद, आनद के घन, आनद के अंवुद व्रजनाथ आदि शब्द किसके लिए प्रयुक्त हो रहे है। इतना अधिक आधिक्य इन शब्दो का है कि साधारण पाठक सोचने लगता है कि सुजान सभवत कोई प्रेमिका रही होगी जिसके प्रेम में ये नेह मकरद झरे है जिन्हे हम घनानद के मुक्त कवित्त सवैये कहते है। और आनद, आनदघन, घनआनद आदि कवि के उपमान है। किन्तु सूक्ष्म अध्ययन साफ वतलाता है कि सुजान शब्द का प्रयोग राधा तथा कृष्ण दोनो के लिए कवि ने किया है और इनके अभिन्न प्रेम रूप को ही 'प्रेम को महोदधि' 'आनंद को अम्वुद' आदि शब्दो से व्यक्त किया है। यह प्रेम रूप अनुभवगम्य है, इद्रिय-ग्राह्य नहीं किंतु प्रेम की विकलता इन्द्रियो की प्यास वढा देती है, वे भी कुछ चाहती है। वे वादलो को देख कर ही सतुष्ट नहीं हो जाती, वे उनकी वर्षा मे अपने को भीजा हुआ पाना चाहती हैं। जिस रस की अनुभूति हृदय करता है आँखे उसके रूप को सामने देखना चाहती है, किन्तु वह असीम, सामने आ कव सकता है, इसलिए प्रेम के ऐसे गम्भीर पथिक के लिए एक सभ्रम, एक विस्मय, एक उलझन की वात सदा रहती है कि अन्तर मे रहने वाले से प्रवासी का सा अन्तर क्यो वना हुआ है, एक ही वास के वसने पर भी विदेश हो रहा है, मिले होने पर भी कोई अमिल कैसे रहता है? इस उलझन मे जो-जो अनुभूति सुख-दुख की घनानद को हुई है उन्हीं को उन्होंने वाणी दी है। दार्शनिक की तरह उन्हे सुलझाने के फेर मे पड कर अपनी विकलता को उन्होने मिटा नहीं दिया है वरन् विछुड़े प्रीतम के मिल जाने पर भी शाति न मान कर प्रेम की विरह जन्य तीव्रता की कटु मधुर सरसता का ही निरन्तर अनुभव वे करते रहे। गोपियो के साथ रास करने के वाद जव कृष्ण अन्तर्धान हो गये तव गोपियों को अत्यन्त दुःख हुआ। स्मृति-विस्मृत, सभ्रम सभी के भावो से उनकी अनुभूति रहस्यात्मक हो गई है। ठीक इसी दशा में घनानंद को हम पाते है। उन्हें प्रेममार्गी रहस्यवादी हम कहेंगे। अस्तु सुजान को जहाँ हम प्रेमिका मानते हैं वहाँ उसे प्रेम का प्रतीक मान कर हम घनानद के अधिक निकट आ जाते है। यदि सुजान कोई नारी थी भी तो सभवतः रासलीलाओ की नारी (राधा) की स्मृति मात्र है जो परमात्मा का प्रेमपूर्ण रहस्यात्मक प्रतीक वन गई है। नख-शिख, नृत्य, संगीत का जो वर्णन सुजान के विषय मे है वह रासलीला की राधा की लीलाओ का प्रभाव और उससे मानसिक कल्पनाओं मे उत्पन्न चेतना का वर्णन है।

आनंद, आनंदघन आदि नाम भी प्रतीकात्मक है और परमात्मा के प्रेम के प्रतीक है रूप और अरूप के बीच की सीमा है। दूर आस्मान में छाये रहते है मस्तक मे स्मृति की तरह, किन्तु दुःख के दिनो में आँसुओ की तरह बरस कर हृदय को हरा-भरा कर देते है। विलम्ब, प्रतीक्षा आदि विफलता, ताप, उद्वेग उत्पन्न कर देते है, किन्तु वृष्टि फिर जीवन में सरसता, पवित्रता, गम्भीरता ले आती हैं। गोपिका-हृदय घनानद ने अपने काव्य के विषय मे जो कुछ कहा है वह साफ बतलाता है कि उनकी कविता सुजान राधा और कृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण है और उसको घनानद ने यश-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, चाटुकारिता, कवि बनने आदि के प्रयोजन से नहीं किया था वरन् अपने 'जीवन को बनाने' के लिए, राधा-कृष्ण के चरण सरोज के मकरन्द मे भाँवरी भरते रहने के लिए ही अपने हृदय के मोतियो को पोह-पोह कर माला बनाई थी और इस माला को उन्हीं सुजान राधा और कृष्ण को कवि ने अर्पण भी किया था। गोपियाँ ब्रजनाथ कहकर विरह की अवस्था मे अधिकतर पुकारती है। घनानद भी गोपियो की भाँति ब्रजनाथ सम्बोधन से सुजान राधाकृष्ण को संबोधित कर कहते हैं—

> प्रगटे सुधन सुवरन् स्वाँति जल जेतौ
> बसे छंद बंद रीति मुकुत उदार है।
> सुन्दर विमल बहु अरथ निधान देषौ
> अचिरज नेह भरे झलकैं अपार है।
> कहै, वृजनाथ ! बहु जतनन आए हाथ
> बरनौ कहाँ लौ एतौ परम सुढार है।
> ए जू सुनौ मित्त चित्त गुन ही पोई
> इन्है राषौ कंठ मुकता कवित्त करि हार है।

अतः स्पष्ट है कि कृष्णार्पण की हुई घनानद की कविता की मूल प्रेरणा घनानद की प्रेमाभक्ति है जो विरह की तीव्रता में भागवत की भक्ति है और प्रेम की सरसता के कारण गौड़ीय संप्रदाय की सखी भावना के अन्तर्गत आने वाली प्रेमानुभूति है।

घनानंद की रचनाएँ

घनानद की सभी रचनाएँ प्राप्त हो गई हो यह नहीं कहा जा सकता। जिन रचनाओ का पता चलता है वे इस प्रकार है—

(१) सुजानसागर, घनानद कवित्त, रसकेलिवल्ली, सुजानहित।

(२) श्री कृपाकद (अथवा काड) निवध।

(३) इश्कलता।

(४) सुजान राग माला।

(५) प्रीतिपावस।

(६) वियोगवेली।

(७) नेहसागर।

(८) विरहलीला (वियोगवेली)

(९) प्रेम-पत्रिका।

(१०) बानी ?

(११) छतरपुर का भारी ग्रन्थ जिसका उल्लेख मिश्रवन्धुओ ने किया है किंतु दरवार लाइब्रेरी जिसका भेद नहीं देती। साधारण रीति से जिसका अभाव उक्त पुस्तकालय मे (वहाँ के लाइब्रेरियन द्वारा) बतलाया जाता है।

(१२) गेय पद।

सग्रह-कर्ताओ ने विषय तथा रुचि के अनुकूल प्राय घनानद की कविताओ को समय-समय पर सग्रहीत करके नाम दे दिये। इसलिए एक ही कवित्त सवैये भी अलग-अलग शीर्षको के अतर्गत सग्रहीत है। कृपाकद निबंध मे वे सवैये विद्यमान है जो सुजानसागर मे भी पाये जाते हैं। इसी भाँति छद-सख्या के अतर से सुजानसागर, आनदघन के कवित्त, सुजानहित, एक ही चीज है। रागमाला और नेहसागर जब तक सामने नहीं आ जाते कुछ उनके विषय मे नहीं कहा जा सकता, बानी को वियोगी हरि ने शिथिल बतलाया है। हो सकता है वह जैन कवि की हो अथवा सयोग पक्ष अथवा नीति विषयक हो।

'इश्कलता' मे आरम्भ मे रचना का उद्देश्य और अन्त मे अध्ययन का फल बतलाया है। यह भी पता चलता है कि यह रचना व्रज मे रची गई रचना के अत मे कवि कहता है—

'इश्कलता जो चाहिये तो वृंदावन आव'

'प्रीति-पावस' मे पावस ऋतु मे व्रज की शोभा, वृन्दावन मे श्रीकृष्ण का गोपी-गोप सहित विहार करने और वर्षा की महिमा का वर्णन है। रचना का आरंभ इस प्रकार होता है—

वन विहरत मोहन घनस्याम।
गिरि गोधन समीप सुखधाम ॥१॥
रितु वरषा हरषी ब्रज बसिकैं।
जित नित बसत स्यामघन लसिकै ॥२॥
नभह असाढ़ बाढ़ि पै रहै।
चौंप चटक आगम ही चहै ॥३॥

घटाएँ घिर कर ब्रज पर झुक आती है। नेह में भीजते हुए वनवारी वन में विचरण करते रहते है। साथ मे सखा भी है। अनेक प्रकार से शोभा देखते है। इनका वर्णन करते हुए कवि रीझ जाता है। इस आनदरस के स्थायित्व की कामना करता है—

भीजे रहत प्रीति पावस निस।
पावस सुप बिलसत भीजति रस।
यौं ही भीजत भिजवत रहौ।
ब्रजरस सुप सवाद नित लहौ॥

और अन्त में आनदघन (कृष्ण) से अपने प्राण पपीहा को भी रस से सराबोर कर देने की विनय करता है।

गोप दुलारे जसुदा जीवन।
अतिरस प्यावस अतिरस जीवन।
पावस प्रीति पपीहा दरसै।
तोषै पोपै पीवत रसै।
घर घातक कौ न मन परसै।
ब्रज प्यासनि आनंदघन बरसै॥

यही रचना समाप्त हो जाती है।

रचना की शैली में शिथिलता है, इसमे कोई सदेह नही, किन्तु उसमे विद्यमान भावधारा वही है जो घनानद की अन्य रचनाओ के मूल मे है। उद्वेग अवश्य तीव्रता पर नही है, किन्तु आकाक्षा के मूल मे चातक की प्यास निहित है। विन्दु के समान वह पावस की बूँदो मे व्याप्त है। बरस कर, फैल कर सागर वह अभी नहीं हुई। कुररी का रुदन अभी शेष था। विरह ने प्रेम के सागर को लहराया है। जिसकी झलक 'वियोगवेली' से दिखलाई देने लगती है।

'वियोगवेली' मे कृष्ण के रास के बाद अन्तर्धान हो जाने पर गोपियो की दशा का मार्मिक चित्रण है। फारसी छन्द हिन्दी भाषा मे इस तरह ढल गया है कि उसका विदेशीपन खटकता ही नहीं। उस ओर ध्यान नहीं जाता इसका कारण वर्ण्य

विषय की तीव्रता है। मार्मिक हृदय को छूने वाली करुण पुकार के सम्मुख किसका ध्यान छन्द पर जा सकता है। गोपियाँ कृष्ण को अपने बीच न देख कर अधीर हो जाती है। पुष्प, लता, वृक्ष, कुञ्ज, पर्वत, नदी आदि सब स्थानो मे उन्हें ढूढने लगती है, किन्तु अपने ही हृदय मे गर्व के पीछे छिपे सलोने स्याम पर उनकी दृष्टि नहीं जाती, एक ही ग्राम मे बसने पर उन्हे विदेश हो गया है, अधीर होकर वे पुकार उठती है—

कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ।

प्राणो मे सलोने की ही मूर्ति है किन्तु आँखो के आगे वह नहीं दीखती, गोपियाँ इस निर्गुण (अभाव) के भाव मे विकल है। वे, क्षण भर के लिए ही चाहे क्यो न हो, सगुण सरस रूप को आँखो के सामने चाहती है—

रहौ किन प्रान प्यारे नैन आगे।
तिहारे कारने दिन रैन जागें।
दिखाई दीजिये हा हा अमोही।
सनेही है रुषाई क्यौंऽब सोही।

बिना कुछ कहे ही आनद के बीच से जो एकाएक चला गया उसके आने की भी कोई आशा नहीं। वह कह कर तो गया नहीं। उसकी निष्ठुरता पर अचम्भा होता है किन्तु उसकी पहले की प्रीति अविश्वास को भी नहीं बढने देती सुख और दुःख दोनो एक साथ तीव्र होकर मौनमय पुकार कर देते है।

कहीं तब प्यार सों सुष दैन बातें।
करौ अब दूर ते दुप दैन घातैं।
बुरे हौ जू, बुरे हौ जू, बुरे हौ।
अकेली कै हमै ऐसे दुरे हौ।
अजू ऐसे कहौ कैसे बितइये।
अवधि बिन हूँ सदा पैंडो चितइये।
अनोपी पीर प्यारे कौन पावै।
पुकारो मौन मै कहिवै न आवै।

मिलन की आस छूटती नहीं। बाँसुरी की धुन अभी तक कानों मे गूँजती रहती है। तिरछा मुकुट, वक्र चितवन, हँसते बोलो मे छवि फूलो की बरखा सजीव होकर हृदय को सालने लगती है। अचानक जब दृष्टि के आगे दो प्रेमी मिलते दिखाई देते हैं तब अभाव मे पूर्व स्मृति हृदय को चीरने लगती हैं। तुम्हे कैसी सुहाई है जो रसवत हो कर पपीहो को प्यास से मार रहे हो। यदि तुम ही ऐसा करोगे तो आनंद कौन देगा। जल ही यदि जलाने लग जाय तो शीतलता कौन दे सकता है? अमृत ही मारने लग

जाय तो जीवित कौन करेगा ? ब्रजनाथ, गोपीनाथ तुम कहलाते हो और ब्रजबाला गोपियों का ही यह हाल कर रहे हो ?

सुहाई है तुम्हैं कैसी अनैसी।
कहैं का सों करो तुम ही जु ऐसी।
जरावै नीर तौ फिर को सिरावै ?
अमी मारै कहौ जू को जिवावै ?
जु चंदा ते झरैं दैया अँगारे,
चकोरन की कहो गति कौन प्यारे ?
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे
करै विरहा हमारे हाल ऐसे ?

गोपियाँ ऐसा सोचती हुईं पूछने लगती है—

हियो ऐसो कठिन कब तें कियो है ?
बली अबलानि मारन पन लियो है ?

और आखिर थक कर कहती है—राधा को अपना लीजिये—हमे अपना लीजिये—

करौ अब सो तुम्हे आछी लगे जो,
जसोदानंद जैसे जस जगै हो।
तिहारे नाम के गुन बाँध डारी,
विचारो जू विचारी है विचारी।
दया दिखराय विनती कीजिये जू,
परे पायन हिये धरि लीजिये जू।

हम तुम्हारी है तुम्हे ताती हवा न लगे। तुम जहाँ रहो सुखी रहो—

तिहारे नाम पै हम प्रान वारैं,
जहाँ हौ जू तहाँ रहिये सुपारै।

अपने किये का फल हम पा चुकी है अब सब ऐंठ निगल गईं। जो तुम्हे भावेगा वही करेंगी, मान नहीं करेंगी—तुम आ जावो—

भई सूधी सुनो बाँके बिहारी,
न करिहै मान, फिर सों है तिहारी।
चढी थीं मूँड, अब पायन परेंगी,
कहौ जोई अजू सोई करेंगी।
दई कौ मानि कैं अब आनि ज्वावो,
पियासी है पियारे रस पिवावो॥

तुमने तो हँसी की है किन्तु हमे फाँसी हो गई है। तुम्हें किसकी पीड़ा है जो व्यथा को पहिचान सको? स्वयं तो तुम पर न्योछावर है अब है क्या जिसे वारे? सदा से तुम्हारी दासी रही है, क्या वंशी की धुन सुनते ही घर-बार छोड़ कर बन मे घिर नही चल आई थी? तुम्हारे साथ छाया की तरह डोलती फिरती है उसी मे हमे आनन्द आता है। तुहारे ही साथ हमारी शोभा है। चलते, फिरते, उठते, बैठते, सोते जागते तुम्हे ही देखना, तुम्हे ही भेटना चाहती है। तुमसे अलग हम कब है? हे अभंगी आनन्द के घन, श्याम, तुम जीते रहो और हमे भी अमृत पिलावो जिलाओ।"

इस प्रकार के विरह-निवेदन से ही वियोगवेली पल्लवित पुष्पित हुई है। भागवत् दशम स्कध के गोपी विरह-निवेदन ने सरस भाषा और अनुभूति की तीव्रता मे अभिव्यक्ति पाई है। इतनी सजीवता, इतनी मर्मस्पर्शिता वियोगवेली मे है कि वह रुदन करती हुई विकल गोपियो को आँखो के सामने ले आती है और साथ ही बतला देती है कि भक्ति की भावना मे स्वय 'आनन्द' का हृदय गोपी बन गया है। वह 'आनन्द' जिसका हृदय 'आनन्दघन' के लिए चातक बन गया है। आनन्दघन घनआँनद नही तो क्या है? इस आनन्द के हृदय की अँखियाँ जब नित ही उघड़ कर बरसी तब पृथ्वी ने सुजान के हित (प्रेम) का अपार महा उदधि पाया और लोग उसे 'सुजान-सागर' कहने लगे।

सागर में सभी प्रकार की तरगे होती है किन्तु कोई लहर प्रधान रूप से भी विद्यमान रहती है। 'सुजान-सागर' में सुजान (राधा और कृष्ण) की अपार लीलाएँ—फाग, दानलीला, रासलीला आदि है किन्तु सब से अधिक विस्तार विरह-लीला ने पाया। सयोग और वियोग दोनो ही पक्षो को विरह की तीव्रता के लिए तन्मय होकर आलोडित किया गया है। सयोग की पृष्ठ-भूमि पर वियोग की भावनाओ का विशाल बटवृक्ष फैला है। एक-एक स्मृति, विस्मृत करने आ जाती है, और होश आने पर फिर हृदय क्रन्दन करने लगता है।

वियोगवेलि में जो लीला बीज के समान है वही सुजान-सागर मे परावार के समान हो गई है। सुजान सागर को पार करने के लिए वियोगवेली की नौका की शरण लेना नितात आवश्यक है। वियोगवेली के प्रसग को ठीक से समझ लेने के पश्चात् यदि हम 'सुजान-सागर' के कवित्त और सवैयो को पढे, तो उनका ठीक-ठीक अर्थ समझने मे कठिनाई नही हो सकती। कृष्ण के अदृश होने पर गोपियो की जो दशा हुई उसी का चित्रण प्रधान रूप से 'सुजान-सागर' का विषय है। विरह-निवेदन इसका साक्षी है।

'प्रेम-पत्रिका' गोपियो के हृदय-पत्र पर लिखी हुई उसी अकथ-कथा की पाती है जिसके दर्शन 'वियोगवेली' और 'सुजान-सागर' के विरह-निवेदन प्रसङ्ग मे होते है। 'कटुक प्रीति के मिठास भरे स्वाद' से पूर्ण इस पत्रिका को पढ़ कर एक तीव्र वेदना हृदय मे उत्पन्न होती है और सुजानसागर के भ्रमरगीत प्रसङ्ग के, वे

कवित्त और सवैये याद आ जाते है, जिन्हें आँसुओं को चुप-चुप पीते हुए एक निश्वास छोड़ कर घनआनंद ने लिखा होगा।—वहां गोपी-हृदय घनआँनँद के स्वर थे—

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यो।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यों पचि कै रचि राखि विसेख्यो।
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
सो घनआँनँद जान अजान लौं टूक कियो पर बाँचि न देख्यो।

यहां—

अकथ कथा की पाती छाती भई है, नैक लागि पिय बाँचौ, दूरि भयै दई
जान बूझि आनाकानी दयाल न दीजिये, दुखिया जिय कौ जतन कछू तौ कीजिये

कृष्ण के विना वृन्दावन की कुञ्जलता, यमुना देखकर वे रोते है—

वेई कुंज पुंज जिन तरें तनु बाढ़तु हौ,
तिन छोह आएँ अब गहन सो नहिगो।
सरित सुजान चैन बीचिन सौं सींची जिन,
वही जमुना पैं हेली वह पानी बहिगो।
वहै सुख श्रम स्वेद समै को सहाय पौन,
नाहि छियै देह दैया महा दुख दहिगो।
वेई घनआँनँद जू जीवन को देते, तिनही—
को नाम मारिनि के मारिबे को रहिगो[1]॥

---

[1] अ— जा थल कीन्हे विहार अनेकन ता थल काँकरी बैठ चुन्यो करें ;
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करें।
आलम जौन सी कुंजन में करी केली तहाँ अब सीस धुन्यो करें ;
नैनन मे जो सदाँ बसते तिन की अब कान कहानी सुन्यों करें।
—आलम

ब— जा की कुंज पुंज तरे भौंर रस गुंज करें,
ता ही तरुवर तर सिर धुनियत हें।
जा ही रसना सों कही रसिक, रसीली बातें,
ता ही रसना सों अब गुन गनियत हे।
गोकुल बिहारी बिन भई हें अचेत ह्वदें,
ए हो दई एसें हेत-षेत लुनियत हे ;

घनीभूत भावना थोड़े ही शब्दो मे इस प्रसङ्ग मे प्रेम-पत्रिका मे लिखी गई है—

वृंदावन घन कुंजें देषति हैं जबै पात फूल फल डारी बिराजत हौ सबैं।
ढिग ह्वै यौं दुख देत, दूरि तै दूरि से हाथ न लागत हाइ रहै हौ पूरि सैं।
बिबस बिसूरि राति दिन बीतई, सब बिधि हारी, हाइ बिरह बल जीतई।

आशा, विश्वास, निराशा, वेदना, निवेदन, हित-कामना सब कुछ इस छोटी सी पत्रिका मे घनानद अपने आनद के घन के लिए लिख गये और उस पत्र को पथिक के हाथ दे कर अत मे कुछ कह भी गये हैं—

या पाती कौ (सं)देस पथिक प्राणौं लहै, आस निगड समेत चलन उनयौ है।

पता नहीं इस पत्र का उत्तर कभी घनानद को मिला या नहीं, किंतु खून के आँसुओ से लिखी हुई यह पत्रिका आज भी सहृदयो को रुला देने, तथा पत्थरो को पिघला देने के लिए साहित्य मे विद्यमान है।

गेय पदो मे सभी प्रकार की भावनाओं को रूप-वाणी मिली है। कृष्ण-जन्म, राधा-भक्ति, फाग, प्रेम-प्रसग, गुण-कथन, मुरली-माधुरी, सभी पर सुन्दर गीत बने है, किंतु अधिकाश गीतो मे विरह की भावना ही प्रधान रूप से है। तन्मयता जैसी गीत मे है वैसी अन्यत्र छद के बधनो मे सीमित हो जाने से नही निखरी है। किन्तु भावना की एक तानता, विषय की एक रूपता, अभिव्यक्ति का चमत्कार, कवित्त, सवैयो, अन्य छन्दो तथा गेय पदो सभी मे विद्यमान है। हृदय मे जब तन्मयता होती है, भावो में जब एकनिष्ठता होती है, मन मे जब अनुभूति की तीव्र वेदना रहती है तब अभिव्यक्ति चाहे जिस रूप को ले ले वही सुन्दर सराहनीय और अभिवन्दनीय बन जाता है।

जेई कान्ह निसु दिन नेननि के तारे हुते,
तेई कान्ह काननि कहानी सुनियत है।
—गोकुलबिहारी

स— **वे ई ससि सूरज उवत निसि-द्यौस,**
वे ई नखत समूह झलकत नभ न्यारो सो,
वे ई देव दीपक समीप करि देखे,
वे ई दून्यौ करि देख्यो, चैत पून्यौ को उज्यारो-सो;
वे ई बन-बागन बिलोकै सीस महल, कनक,
मनि, मोती कछू लागत न प्यारो सो;
वाही चंदमुखी की वा मंद मुसुकानि बिन,
जानि परो सब जग अधिक अंध्यारो-सो। —देव

विरहियों की प्रेम-भावना

मानव-आत्मा अपनी विकलता में जिस छवि की अनिंद्य सुंदर मूर्ति को पहचानती है उसका रूप, उसके गुण, उसकी भावना मनुष्य को सुन्दर लगने लगती हैं।[1] कालिदास का दुष्यंत, संगीत की मधुर ध्वनि, जिसका संबध उसके हृदय तथा जीवन से था, सुन कर विकल हो जाता है और सोचता है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

यह जननान्तर से चला आता हुआ स्थिर भाव है जो सुन्दर वस्तुओं की उपस्थिति से चेतना मे सजग होकर चिर सुन्दर की प्राप्ति से होनेवाली आनदानुभूति के लिए प्राणों को विकल कर देता है। वस्तु की उपस्थिति चेतना मे जिस स्मृति को जागरित करती है वह आनद की स्मृति होने से सुखद तो है किन्तु आनंद की आधार वस्तु के अभाव से उसमे दुःख की छाया भी आ जाती है। साधारण अवस्था में ये दोनो—अभावात्मक दु ख की और भावात्मक सुख की—अनुभूतियाँ एक साथ ही मिली होती है। इसलिए विरही को विरह के दु.ख में भी प्रिय की स्मृति का सुख है। प्रेमी विषम दशाओ को भी प्रिय के ही प्रेम के आसरे झेलता है। वह प्रेमी, प्राणधनी के ध्यान मे ही आठ पहर, चौसठ घडी डूबा रहता है।[2] और जब वियोगी का तन-मन,

---

1 "The Youth sees the girl; it may be a chance face, a chance outline amidst the most banal surroundings. But it gives the cue. There is a memory, a confused reminisence. The mortal figure without penetrates to the immortal figure within—and there arises into consciousness a shinning form glorious, not belonging to this world, but vibrating with the age-long life of humanity and a memory of thous-and love dreams The waking of this vision intoxicates, the man; it glows and burns within him and goddes (it may be Venus herself) stands in the sacred place of his temple, a sense of awe-struk splendour fills him and the world is changed"—Edward Carpenter.

2 आठ पहर चौसठ घड़ी रहता प्रिय का ध्यान।
छूट गया उससे स्वयं पीछे आत्म-ज्ञान ॥—'साकेत'

प्रिय-मिलन की घनीभूत आशा मे एक हो जाता है तब न मौत ही आती है न जिया ही जाता है[1] —

अतर उदेग दाह, आँखिन प्रवाह आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोइबो न जागिबो हूँ, हँसिबो न रोइबो हूँ,
खोय खोय आप ही मै चेटक लहनि है॥
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंघन,
विरह विषम दशा मूक लौ कहनि है।
जीवन मरन बीच बिना बन्यो आय,
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है॥

—घनानंद

इस अवस्था का कारण, प्राणो का जीवन की वास्तविकता से सदैव रहनेवाला सघर्ष है। आत्मा और अनात्मा का यह सघर्ष ही जीवन के दु ख का कारण है, इसीलिए किसी समय मन एक विकल उदासी मे रहता है। सभवत. सगीत सुनने से, सुंदर वस्तु के स्पर्शन-दर्शन से, सुगधित वस्तुओ के प्रभाव से मन मे अपने आत्मा के पूर्व सत्य-शिव-सु दरम् रूप की अव्यक्त स्मृति की छाया जागरित हो जाती है और प्राणी को एक बेचैनी का अनुभव होने लगता है जिसमे उसे वेदना होती है, एक टीस सी उठती है मानो उसने कुछ, जो पहले उसका था, खो दिया है। और अनजाने ही इस खोई वस्तु की खोज मे प्राणी निरतर लगा रहता है, इसीलिए दैनिक जगत मे सुख की आकाक्षा मे और साहित्य तथा साधना के क्षेत्र मे आनद की प्राप्ति मे मानव लगा रहता है।[2] इस कारण (शोक) दु:ख हमारी आत्मा की साधना को घनीभूत कर देने वाला तत्व है, और शोक से श्लोक बना हुआ गीत सब से प्रिय होता है (Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts)। भवभूति ने सभवत: इसी कारण 'उत्तर रामचरित' मे करुणा को ही एकमात्र (प्रधान) रस माना है। शोक मे मनुष्य को अपने मे लीन कर देने की सब से अधिक शक्ति है, इसी कारण विरह मे बहाये हुए आसुओ मे, वियोग की उसासो और वेदनाओ मे भी एक प्रकार की शाति और मधुर

---

[1] नही मृतक नहि जीवता, नहि आवे नहि जाय।
नहि सूता नहि जागता, नहि भूखा नहि खाय॥—दादू
रात दिवस मोहि नीद न आवत, भावत अन्न न पानी।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन विहानी।—मीरा

[2] देखिये 'अंजलि' मे लेखक का 'अज्ञात की ओर' लेख।

तीखी शीतलता होती है। प्रेम, विरह की अग्नि और दुःख के आँसुओं से ही पवित्र होता है। जीवन की वास्तविकता, देश-काल और परिस्थिति से उत्पन्न होती है। मिलन को विरह में परिणत कर देनेवाली शक्तियों से प्रेमी के हृदय का प्रेम—सुख-दुःख की काली घटाओं से संयुक्त होकर विकसित होता रहता है। मिलन के महासुख के लिए विरह ही सब से अधिक सजीव साधना है, इसीलिए प्रेमियों ने विरह को मिलन से श्रेष्ठ माना है—

प्रीति न उपजइ विरह बिन, प्रेम भक्ति क्यों होय।
झूठे दादू भाव बिन, कोटि करइ जो कोय॥
विरह जगावइ दरद को, दरद जगावइ जीव।
जीव जगावइ सुरति को, पंच पुकारइ पीव॥
पहिला आगम विरह का, पीछइ प्रीति प्रकास।
प्रेम मगन लवलीन मन, तहाँ मिलन की आस।—दादू

और हँसना छोड़ कर रोने की सलाह दी है—

कबिरा हँसना दूर कर, रोने सौ करु प्रीति।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत।

रोना प्रेम का सार है[1] और प्रेम जीवन का अन्तिम लक्ष्य, इसीलिए कवि कहता है—

विरहा मेरा मीत है, विरहा बैरी नाहिं।
विरहा को बैरी कहइ, सो दादू किस माहिं।

मिलन में रोने का अंत हो जाता है इसलिए प्रेम का भी। जागृत गति तो विरह है—

मिलन अंत है मधुर-प्रेम का, और विरह जीवन है।
विरह जीवन की जागृति गति है और सुसुप्ति मिलन है।

विरह के इस महत्व के कारण ही प्रेमी, विरही की विषम दशा को 'रहनि' रहता है, जिसमें उसकी आँखें प्रिय के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखती, उसके कान प्रिय की वाणी के अतिरिक्त और कुछ नही सुनते, उसकी जिह्वा रात-दिन प्रिय का ही नाम उच्चारती है। उसका अंग अंग प्रिय के रस-रंग मे भीग जाता है। उसके मन सिंहासन पर प्रिय का ही ध्यान विराजता है—

जबते निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तबते गही है उर आन देखिबे की आन।

---

[1] मिलाइये—

करुणे क्यों रोती है 'उत्तर' में और अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो उसे 'भवभूति' कहे क्यों कोई॥

रस भीजै बैननि लुभाइ कै रचे हैं तहीं,
मधु मकरन्द सुधा नावौं न सुनत कान ॥
प्रान प्यारी ज्यारी घनआनंद गुननि कथा,
रसना रसीली निसि बासर करत गान।
अंग-अग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन सिंहासन पै विराजै तिनही को ध्यान।

अग-अग को प्रिय के रग मे डुबा देनेवाला यह विशेष योग ही वियोग है, जिसमें प्रियतम की अभावात्मक रूप-रेखा तो आँखो के सम्मुख रहती है किंतु प्रिय की शारीरिक अनुपस्थिति से पूर्ण आनदानुभूति प्रिय को नहीं होती। आनंदानुभूति का विश्वास उसे शरीर की उपस्थिति मे होता है।[1] इसलिए वह परमात्मा को भी साकार रूप में देखना चाहता है, मनुष्य रूप मे भगवान् को पाकर भक्त को उसकी प्रीति का पूरा विश्वास हो सकता है, प्रेम के लिए दृढ़ आधार मिल सकता है, क्योकि प्रेम को दृढता समान जाति की वस्तुओं मे ही मिल सकती है—

पीरिति रतन करिबो जतन, जदि समाने समाने हय।
—चंडीदास

मनुष्य, मनुष्य के प्रेम को ही भली भाँति समझ सकता है।[2] ईश्वर, ईश्वर रह कर हमारी श्रद्धा भले ही पा ले किंतु उस दशा में हमारे अटूट विश्वास पर अवलबित प्रेम का पात्र वह सहज ही नहीं हो सकता। उसके ईश्वरत्व तक पहुँचने के लिए मनुष्यत्व की सीढी पर पहले चढना पडता है, इसीलिए निर्गुण भक्ति के समर्थक कबीर ने भी सगुण का बहिष्कार नहीं किया, वरन् निर्गुण के भी परे पहुँचने के लिए उसकी सेवा करने का उपदेश देते हुए कहा—

सर्गुण की सेवा करो, निर्गुण का करि ग्यान।
सर्गुण निर्गुण के परे तहैं हमारा ध्यान ॥

और सगुण भक्ति के समर्थक तुलसी ने स्पष्ट शब्दो मे उसे चुनौती दी है जो अज्ञान

---

[1] सब सह सकता है, परोक्ष ही कभी नहीं सह सकता प्रेम।
बस प्रत्यक्ष भाव में उसका रक्षित सा रहता है क्षेम ॥—पंचवटी

[2] "Conjugal love concentrates as it is upon an object exclusively is more enduring and complete than any other. From personal experience of strong love, we rise by degrees to sincere affection for all mankind."—A. Compte—A Generl View of Positivism P. 251, 52, 272.

के बिना ज्ञान, अंधकार के बिना प्रकाश और सगुण के बिना निर्गुण बतला दे। उसे वे अपना गुरु मानने को तैयार है—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास॥

उच्चकोटि के भक्त और ज्ञानियो को भी जब साकार की आवश्यकता होती है[1] तब साधारण मनुष्य का काम तो रूप-आकार के बिना चल नही सकता। अरूप, रूप पाकर ही अभिव्यक्त और सुंदर होता है। रूप मे ही आत्मा अपने सौदर्य को देख सकता है।[2] अस्तु, मनुष्य, मनुष्य होने के नाते अपनी भावनाओ के देवता को भी मनुष्य की ही भाँति क्रिया-कलाप करते देखना चाहता है। इसीलिए घनानद की गोपियाँ कहती है—

हम और कछू नहि चाहति है छनकौ किन मानस रूप मिलौ।

अपने सुख-दुख मे भाग लेते हुए देखकर ही मनुष्य को भगवान् की प्रीति मे दृढ विश्वास हो सकता है। मन के टिकने के लिए हम आधार चाहते है—

जान छबीले कहो तुम ही जो न दीसौ तो आँखिन काहि दिखाऊँ।
कौन सुधाई सनी बतियानि बिना इन काननि लै कहा प्याऊँ॥
हाय मरयो मन पीर तें प्रीतम या दुखियाहि कहा परचाऊँ।
चाहत जीव धरयो घनआनँद रावरी सौ कहुँ ठौर न पाऊँ॥

इसीलिए वियोगी प्रिय के भावात्मक ही नहीं, स्पर्शात्मक दर्शन भी चाहता है। इद्रिय-ग्राह्य वस्तुओ के बिना मनुष्य का मन आनद की अनुभूति मे विश्वास नहीं कर पाता। आनदानुभूति मे विश्वास होने के लिए आवश्यक रूप की प्राप्ति में ही विरही की तड़फन है। जीवन की कठोर वास्तविकता इस तड़फन को ही बढ़ाने मे सुख मानती

---

[1] रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम अगोचर जानि ताते सूर सगुन पद गावै॥
—सूरदास

[2] स्वयं हि बहवो भूत्वा रमणार्थं महारसः।
तयातिरमया रेमे प्रियया बहुरूपया॥ —नारदपांचरात्र

'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्।' —वेदान्तसूत्र

'एकोऽहं बहुस्याम।'

है।[1] चातक, चकोर, मछली सभी की तड़फन, प्रकृति का एक-एक स्वर अपने ही प्रिय की चाह में फैलने वाली 'पी आस' की पुकार है। इस प्यास (पी आस) की तृप्ति के लिए जिस अमृत की चाहना प्रेमी करता है वही प्रिय का साक्षात्कार है। उस साक्षात्कार के स्पर्शन दर्शन में जब तन-मन एक हो जाता है। तभी विरही सुखी हो सकता है—

राम अकेला रहि गया, तन-मन गया बिलाय।
दादू विरही तब सुखी, जब दरस परस मिल जाय॥

जब तक यह बात नहीं होती प्रेमी सुखी नहीं हो सकता[2]—

जब लग नैन न देखिये, परगट मिलै न आय।
एक सेज संगहि रहै, यह दुःख सह्या न जाय॥

प्रेमी उस दिन के लिए तरसता रहता है जिस दिन उसे प्रिय के दर्शन-स्पर्शन हो सकेंगे—

---

[1] Dr T. V. Seshgiri Row—The Function of Art P 247.

"Life demands that we grapple things in their relation to our needs We accept only the utilitarian aspect of things, events and persons, so that we may respond to them by useful reactions. Aye, they are to be suppressed mercilessly The practical interest in life thus dominantes our vision of things, persons, events etc. in the world, so that they appear ugly and destorted."

[2] निकट बसौ दूर रहौ, एक मन्दिर माँह माधवे।
कै मिलिहौ कै तन तजौं, अब मोहे जीया नहिं माधवे॥
—हरिदास निरंजनी

सब घटि साँई रमि रहा, सूनी सेज न कोय।
भाग तिन्हों का हे सखी, जा घट प्रगट होय॥—कबीर

कहु रहीम कैसे बने, अनहोनी है जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय॥—रहीम

मन में बस कर भावते, कहौ कवन यह हेत।
प्रगट दगन कौं आइ कै, क्यों न दिखाई देत॥—रसनिधि

घनआनँद रस ऐन, कहो कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा नैन, दरसौ पै बरसो नहीं॥—घनानंद

छवि को सदन मोद मंडित बदन चंद,
तृषित चषनि लाल कबधौ दिखाय हौ।
चटकीलौ भेष करे मटकीली भाँति सौही,
मुरली अधर धरे लटकत आय हौ।
लोचन दुराय कछु मृदु मुसिक्याय, नेह—
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
विरह जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि आनँद को घन बरसाय हौ॥

किंतु सर्वत्र बिखरे पड़े उस असीम सौंदर्य-दर्शन[१] की घड़ी सहज ही नहीं आती। उसके लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है।[२] विरह की विषम दशाओ मे मन के मैल को भस्म करना पड़ता है।[३] धीरज धर विरह की अकुलता से जो प्रियतम की खोज मे आतुर होकर अपने प्रेम को पूरे विश्वास के साथ आगे बढता है उसे ही प्रियतम का दीदार दिखाई देता है।[४]

---

[१]बागे आलम मे नहीं हुस्न के फूलों की कमी।
जाइये जिधर ले आइये झोली भर के।

[२]"Eyes can only see dust and earth. But feel it with your heart, it is pure joy. The flowers of delight blossom on all sides in every form. But where are your hearts' thread to weave them in a garland?"

—A Boul Poet.

सब घट साईं सेइया, सूनी सेज न कोय।
भाग तिन्हीं का है सखी, जेहि घट परगट होय॥

—कबीर

[३]विरह अगनि में जल गये मन के मैल विकार॥—दादू

बाट विरह की सोधि कर, पंथ प्रेम का लेहु।
लव के मारग जाइ के, दूसर पाँव न देहु॥

—दादू

[४]अद्भुत प्रियतम की प्रभा, सब मे रह्यो समाय।
व्याकुलता जा हिय बसै, प्रियतम ताहि लखाय॥

सुर,[1] तुलसी,[2] कबीर,[3] दादू,[4] घनानद,[5] मीरा[6] सभी मे प्रेम-विरह की यह विकलता थी, जिसके कारण वे इतने बडे प्रेमी हुए और अपने प्रियतम की प्राप्ति कर शाति प्राप्त कर सके।

प्रेम की पीर के लिए विह्वल प्रेमी अपने विश्वास के बल पर सब आपत्तियों को धैर्य से सह सकता है।[7] और अपने प्रिय से एकरस प्रेम[8] करना नही छोडता। प्रेम की कठिन परीक्षा देता है। ऐसे प्रेमी का कुछ भी अनिष्ट सासारिक सकट नही कर सकते—

कोटि बिघिन संकट विकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सके, जो सुदृष्टि रघुनाथ॥

---

[1]एकै निश्चय प्रेम को जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निश्चय प्रेम को जातै मिलै गोपाल॥—सूर

[2]कबहूँ, कपि, राघव आवहिंगे?
मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे॥—तुलसी

[3]वे दिन कब आवेंगे माइ
जा कारन हम देह धरी है मिलिबो अंग लगाइ।—कबीर

[4]दादू आतुर विरहिनी कारने अपने पीव।—दादू

[5]पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हे धरनी मे धसौ कै अकासहि चीरौ?—घनानंद

[6]वा विरियाँ कब होसी, मोफूँ हरि हँसि कंठ लगावै।—मीरा

[7]झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सब ने आ डेरा डाला॥—प्रसाद

रूई दिये रहोगे बहिराइबे की कौलो,
कबहूँ तो मेरियै पुकार कान खोलि है।—घनानंद

[8]उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥—तुलसी

चाहौ अन चाहौ जान प्यारे पै आनँदघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।
मोहि तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछु चंदहिं चकोरन की कमी है॥

सांसारिक सब दुखों को तो प्रेमी ईश्वर के भरोसे छोड़ कर[1] सह लेता है, किंतु भगवान् का साक्षात्कार न होने से जो दुःख उसे होता है उसे सहना उसके लिए अत्यंत कठिन हो जाता है। बेचैनी उसे आग, पानी, पृथ्वी आकाश सब जगह प्रिय की खोज मे घुमा देती है,[2] किंतु फिर भी उसे जब प्रिय के दर्शन नहीं होते तो वह मृत्यु की कामना करने लगता है—

कै बिरहिन को मीच दै, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझणा मो पै सह्या न जाय॥—कबीर

किंतु साधना-जीवन की यह अँधेरी रात (Dark night of the Soul) एक आशा की किरण[3] छोड कर प्रेमी को बचा लेती है। वह—

सच है घन-तम में खो जाते श्रोत सुनहले दिन के।
पर प्राची से झरने वाली आशा का तो अंत नहीं॥—(चन्द्रकुँवर बर्त्वाल)

सोचता हुआ प्रिय-दर्शन की आशा से, प्रिय का नाम ले-लेकर ही अपने प्राणों को जीवित रखता है—

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे।
हिए मैं उदेग आगि लागि रही रात द्यौस,
तोहि को अराधौं साधौं तपि तपि रे।
जान घनआँनँद यों दुसह दुहेली दसा—
बीच परि-परि प्रान पिसे चपि-चपि रे।

---

[1]काहे को सोचि मरे जियरा परी तोहि कहा बिधि बातन की है।
जाकी कृपा मित छाय रही दुख ताप तें बौरे बचाय ही ली है॥
—घनानंद

[2]अंतर हौं, किधौं अंत रहौं, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं, अकि पानि परौं, अब कैसी करौं, हिय का बिधि धीरौं।
जो घनआँनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहा प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हे धरनी मे धँसौं के अकासहि चीरौं॥

[3]दृगनीर सों दीठिहूँ देहुँ बहाय, पै वा मुख की अभिलाषि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाषि रही।
घनआँनँद जान सुबैननि त्यौं रुचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय परै कबहूँ, पिय कारन यौं जिय राखि रही॥

जीव ते भई उदास, तऊ है मिलन आस,
जीवहि जिवाऊँ, नाम तेरो जपि-जपि रे ॥

और प्रिय भी एक दिन उसकी शिथिल आह से खिचे हुए चले ही आते हैं। रो-रो कर उसे अपनाते है। उसका जीवन धन्य हो जाता है।

गगन गरजि बरसे अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँदिसि दमके दामिनी, भीगे दास कबीर ॥

प्रेम की सच्चाई, साधना की एकरस लगन, भक्ति की दृढता और सहनशीलता की गभीर धीरता किसी को भी मँझधार मे नही छोड़ती।

घनानंद का विरह-निवेदन

एक दिन था प्रेमी के सामने प्रेम की मूर्ति खडी थी। सुंदर गौरवर्ण मुख, कानो को छूनेवाली मरत आँखे, लाज से लिपटी भेद-भरी चितवन, कपोलो पर कलोल करती हुई लटे, कठ में जलजावलि, अग-अंग मे उठनेवाली रूप की तरंगे, मुख पर मीठी हँसी, सभी तो एक से एक मन को रिझानेवाली बाते थीं। अनेक बार प्रेमी ने इस रूप-राशि को जी-भर कर देखा था। एक बार साँवली साडी में यह रूप प्रेमी के आगे था, मानो बिजली स्थिर होकर श्यामघटा मे लिपटी आई हो। दूसरी बार वही मजन कर कंचन की चौकी पर बैठ कर जूडा बाँध रही थी। भाल पर वेंदी लगी थी, माँग में सिंदूर, वह मुख शरद के शशि से भी मनोहर था। एक बार 'मन भावन मीत' को रिझाने के लिए 'अच्छी वन' कर यह छवि आई थी, आँखो मे अजन था, शरीर पर भूषण थे, भौहे कुछ तनी हुई थी, अग-अग में नवीन सौदर्य फूट पड रहा था, शोभा की नदी की भाँति उमगी उफनाती हुई वह चली गई। प्रेमी ने कितनी ही बार उस रूप को देखा था, लेकिन वह प्रत्येक बार नया ही नया नजर आता था। हृदय तो एक ही है, उस पर तो सौ हृदय भी न्यौछावर किये जा सकते थे। आँखो की राह वह छवि रोम-रोम मे रस गई। रूप की तरगो की अधिकाधिक चाह वढ गई। जीवन भर रूप पी कर भी जैसे तृप्ति न होगी। उनकी लीलाओ के रग मे डूब कर मन की विचित्र दशा हो जाती है। उनका प्रेम सदेह को भी अदेह कर देता है। उनके समीप होने से सब वस्तुएँ सुखद हो जाती है। पतझड कभी हृदय को दु खी नहीं करता। प्रिय के तन मे सदैव आनद का बसत सुरभित रहता है। प्रेमी के सुख का अत नहीं।

और एक दिन अपनी दारुण विपत्ति से चकित होकर प्रेमी कहता है—पता नहीं क्या हुआ, वे ही तो मेरे सहाय थे, उन्हे न जाने क्या सूझी सारा सुख अपने अचल में समेट, मुझे वियोग का दु ख दे चले गये। एक बार मेरे अंगो को प्रेम से सीचा और अब उसमे विषाद का विष बीज बोकर चले गये। वह छोटा सा बीज अब अक्षयबट की भाँति फैल रहा है। हाय! जब वे विजयी की भाँति गये थे, मेरे प्राण भी उन्हीं के साथ क्यो न चले गये? मुझे मौत क्यो न आ गई?

और अब दिन फिर चले है, सुधा से विष झर रहा है, फूलों से काँटे उग रहे है। चन्द्रमा तम उगल रहा है। जल अगो को जलाता है और राग स्वर भग कर रहा है, सपत्ति विपत्ति ला रही है। कैसी-कैसी उलटी बातें हो रही है! औषधि पीता हूँ तो वह भी रोग ही को बढाती है, दिनो का फेर है आगे न जाने क्या बीतेगी!

न जाने किस विधाता ने इस विचित्रता से 'नेही की रहनि' को रचा है—न सोया ही जाता है न जगा ही। न हँसा ही जाता है न रोया ही। बिना मौत के ही जीवन और मरण के बीच की दशा आ गई है। हृदय की दशा बवंडर में पत्ते की सी

हो गई है। मुझे विश्वास देकर मारा गया। अचानक वैरी वियोग व्याध की भाँति आ लगा, सारे सुख पखेरू की भाँति उड गये है। अब दु ख झेलना ही होगा, स्नेह खेल भी तो नही है। उसकी ज्वाला से अब जलते ही रहना होगा।

आसमान से झर कर पृथ्वी पर आनेवाली चाँदनी अग्नि की वर्षा कर रही है। आज इसकी शीतलता न जाने कहाँ चली गई! आँखे तब प्रिय की शोभा पी कर जीवित रहती थी आज सोच से मरी जा रही है, उन दिनो हृदय के बीच हार भी पहाड़ लगता था अब पहाड़ ही बीच पड़ गये है! वर्षा के पूर्व ही हृदय को शाति न थी अब तो वर्षा ही आ गई है। रात-दिन तरह-तरह से दु ख अपनी सेना सजाए ही रहता है। मेरे सब उपाय कागज की नावो की भाँति व्यर्थ जा रहे है वे ही बचा सकते थे पर उन्हे तो निठुराई से नेह हो गया है। अपनी बसाई हुई बस्ती को कोई भी नही उजाडता, किंतु उन्होने मीठे-मीठे बोल, बोल कर मेरे हृदय में रगीन कल्पनाओं की सजीव दुनिया बसाई, चित्त मे चाह जगाई और जब आगे बढ गया तब मुझसे रुखाई कर ली, निराधार को आधार दे कर बीच धार मे ले जा हाथ छोड़ दिया! वधिक भी अपने शिकार की खबर ले लेते, है किंतु उसकी रीति बधिक से भी अधिक क्रूर है वह तीर मार कर घायल कर देता है और फिर पख खसोट कर तडफने के लिए जीवित छोड़ देता है। उसकी रुखाई से, मै तो उजड़ जाऊँगा पर उसे क्या मिल जावेगा, अपने हितूओ को बर्बाद कर किसी ने आज तक ससार मे यश नही पाया है। तब तुम्हे जो अच्छा लगे करो मै तुम्हें आशीष ही दे सकता हूँ। तुम चतुर कहा कर जीते रहो। बहुतो के बीच पडे रहने से तुम्हे 'एकलेन' की विथा का क्या पता हो सकेगा। कभी अपनो से वियुक्त होना पडे तो पता लग जाय। पर चन्द्रमा के लिए चकोरो की कमी नहीं होती। हाँ चकोरो के लिए चन्द्रमा बहुत नहीं, एक ही है।

तुम मेरे साथ कपट व्यवहार कर रहे हो, निर्दयी हो रहे हो लेकिन मै भी तुम्हे दया उपजा कर रहूँगा। भरोसे की शिला आशा की रस्सी से छाती पर बाँध कर प्रेम-सिधु मे उतरूँगा, लाखो भाँति की दु सह दशाओ को सहूँगा। साहस समेट कर आरे से सिर भी चिरवा लूँगा, पर तुझे दया उपजा कर ही रहूँगा।

इस दृढ प्रतिज्ञा को लेकर प्रेमी जीवन मे बढता है। किंतु जीवन की कठोर वास्तविकता उसे पद-पद पर ठोकर देती है। आँधी, हवा, तूफान सब आते है,पर प्रेम-पथ का धीर पथिक आपत्तियो को पीठ नही देता है छाती उनके सामने करता है। वे अपना प्रचड उग्र रूप दिखाकर प्रेमी को डराना चाहती है, इसलिए फूला हुआ किंसुक आग उगलता है, वर्षा के मेघ निराशा के घने काले अधकार के मेघो को हृदयाकाश मे ले आते है। प्रेमी अपनी बढती व्यथा की बात सोचता हुआ एकात में टप-टप आँसू गिराता है। थक कर ठडी साँस छोड कहता है—

प्राण मरेंगे भरेंगे विथा पै अमोही सों काहू को मोह न लागै।

विरही की बढ़ती हुई उत्कठा उसे चेतन-अचेतन के भेद से मुक्त कर देती है। वह मेघो

को अपने हृदय की व्यथा का स्पर्श करने को कहता है और उनसे विनय करता है 'तुम मेरे इन आँसुओ को मेरी प्रियतमा सुजान के आँगन में बरसा देना'। वायु से प्रिय के देश मे जाने का अनुरोध करता है और कहता है 'तनिक उन पाँवो की धूल तो ले आओ, मै उस 'जीवन-मूरि' को अपनी आँखो में में पूर कर रक्खूँगा। गहराई तक पहुँची हुई है प्रेमी की यह भावना उसके प्राणो की शोभा और कविता की पवित्रता बढा रही है। वह पवन से यह नहीं कहता कि तू उनके अलको की सुगंधि उड़ा कर ला और मेरे हृदय को सुरभित कर दे, वह यह नही कहता कि हे पवन तू उनको छू कर मेरे अंगो का स्पर्श करके मुझे आनंदित कर दे। वह उनके पाँवो पर लिपटी हुई धूल को अपने सर आँखो मे लगाने के लिए चाहता है! उस गरीब के लिए अब वह तुच्छ धूल ही सब कुछ है! औरो की विरह-व्यथा प्रिय के दर्शन-स्पर्शन आदि से शांत होती है, किंतु इस विरही की विरह-व्यथा उस धूलि से ही समूल नष्ट हो जावेगी जो धूल आँखो में पड़ कर आँखो को कष्ट दिया करती है।

प्रिय को सब जगह देखते हुए भी जब उसे शांति नहीं मिलती है तो उसका बेचैन हृदय कातर स्वरों में पुकार उठता है—

> **अंतर हौ किधौ अंत रहौ, दृग फारि फिरौ कि अभागनि भीरौ।**
> **आगि जरौं, अकि पानि परौ, अब कैसी करौं, हिय का बिधि धीरौ।**
> **जो घन आनंद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।**
> **पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनि मैं धँसौ कै अकासहि चीरौ॥**

और दूसरे ही क्षण शांत होकर वह कहता है "मुझे एक ही आश है, एक ही विश्वास है। और किसी से पहिचान नहीं है। आठो पहर आँखे तुम्हारी ही ओर लगी रहती है। यदि तुम ही रूखे हो जाओगे तो जीवन की सार्थकता ही किस लिए है? मैंने तुम्हें देखने के लिए सब से -अनदेखी कर ली है, यदि तुम्हीं न देखोगे तो कौन देखेगा!"

अपनी दशा को देख कर प्रेमी सोच मे पड़ जाता है। वह देखता है "जिस से मुझे नेह है उसे निठुराई से नेह है, जिस से मेरी पहचान है वह पहचान को पीठ दे बैठा है, फिर किस से अपनी व्यथा कही जाय, असह्यवेदना का हृदय मे अब अधिक निर्वाह भी तो नहीं होता, कहाँ जाऊँ क्या करूँ! रात-दिन कभी भी, कहीं भी, घड़ी भर के लिए चैन नहीं मिलता। तकदीर ही अपनी ऐसी है, दोष किसे लगाया जाय। उससे हृदय की व्यथा कहने से कोई फायदा नहीं जो पीड़ा ही देना जानता है पीड़ा पाना नही, जो हँसना ही जानता है रोना नहीं, जिसने बेधना ही सीखा है बिंधना नहीं! प्राणो की व्यथा को चुपचाप मन ही में रख कर घुल जाना अच्छा है किन्तु अमोही से प्रेम करना अच्छा नहीं!"

इस प्रकार की बाते सोचता हुआ प्रेमी अपने प्रिय की निष्ठुरता को धिक्कारने लगता है—

सुनि निरमोही एक तोही सों लगाव मोही
सोही कहि कैसे ऐसी निठुराई अति रे।
जाहि जो भजे सो ताहि तजै घनआनँद क्यों
हति कै हितूनि कहौ काहू पाई पति रे।

और फिर दूसरे ही क्षण उसे प्रेम से समझाने लगता है "पहले तो विश्वास से तुमने अपनाया, मीठी वाणी और मधुर हँसी से मनमोह लिया और फिर विश्वासी को एकाएक छोड़ दिया, उसके साथ अविश्वास किया, उसे कही का न रक्खा, देखो हितू हो के तुमने यह क्या किया ?"

प्राणो को वजमारा वियोग घेरे रहता है। उपाय काम नही देते। यदि अब भी नही सँभालते तो हेतखेत मे 'धूरि चूरि-चूरि' हुए तुम्हारे घनानद की एक दिन कहानी मात्र ससार मे रह जावेगी। तुम्हारे आने की अवधि नही है, आशा भी नही रह गई है, किन्तु आँखे फिर भी एक सी बाट जोह रही है। पथराई आँखो और मुरझाई काया को देख कर लोग प्रश्न करने लगते हैं, तुम्ही बता दो मै उन्हे क्या उत्तर दूँ ? और यदि किसी ने तुम्हे बुरा भला कह दिया तो मै क्या करूँगा ! मेरे भाग्य मे तो दु.ख ही बदा है। तुम आशीष लेकर जिओ। सदैव फूलते फलते रहो, बाल भी तुम्हारा बाँका न हो।"

अपनी ओर जब प्रेमी का ध्यान जाता है तो वह सोचने लगता है, क्या मुझे प्रेत लग गया होगा ? अथवा मेरे प्रेम की परीक्षा हो रही होगी ? बुद्धि खो गई है, सुधि सो गई है, रोने-हँसने का उन्माद जग गया है।

किन्तु जब प्रेमी की ओर ध्यान जाता है तो उसे कभी प्रिय का हँसना याद आ जाता है, कभी मीठी-मीठी बच्चो की सी बाते करना, कभी नृत्य मे गति लेते और बाँसुरी मे मधुर स्वर बजाते हँस जाना, याद आ जाता है। एक-एक सुधि उसको बेसुध कर जाती है।

होश मे आने पर विरही पूछता है—"हे आनदघन ! कब इन उजड़ी आँखो को बसाओगे, कब इस जलते हृदय की व्यथा शांत करने, अधरो पर मधुर मुरली लटकाये, चटकीली उमग से हँसते हुए आओगे ? मै तुम्हारी ही आश लगाये दीन-हीन की भाँति द्वार पर बैठा हूँ। बिना पानी की मछली मुझे कब तक बनाये रक्खोगे ? तुम्हारे आने की अवधि थी पर अब वह भी बीत चली है। आज तक तो आशा ही आशा से प्राणो को आश्वासन दे कर जिलाता रहा। पर अब झूठी बातो से निराश होकर वह उदास हो गये है, अब उनके जाने की तैयारी है, वे अधरो पर आ लगे है, अभी भी यदि तुम्हारे आने की सभावना हो तो जीवन मे फिर से हरियाली आ सकती है।"

विरही के इस कथन मे मौन प्राणो की व्यथा है। जीवन की निराशा किसी अंधकार के आलोक से सहायता के लिए मानो चन्द्र कुँवर बर्त्वाल के इन शब्दो मे पुकार रही है—

अभी भी यदि आश कुछ होती !
शिशिर से टूटकर भूपर गिरे इस दीन पल्लव को।
हृदय से वृक्ष के लग कर हवा के साथ हिलने की।
अभी भी यदि आश कुछ होती !
बधिक के हाथ से भूपर गिरे इस दीन मृग-शिशु को।
मृगों के झुंड मे मिलकर बनों के बीच फिरने की,
अभी भी यदि आश कुछ होती !
दुःखों के भार के नीचे सिसकते इस दुःखी उर को
किसी की गोद मे जा कर सुखी की भाँति मरने की ॥
अभी भी यदि आश कुछ होती !

निराशा के इस घने अधकार में भी आशा की कोई किरण, विश्वास का कोई कण छिपा हुआ है जो प्राणो को (अधरो पर ही सही) टिकाये हुए है।

घने अधकार से ही प्रकाश की किरणे फूट कर दीप्त हासिनी आनद की ज्योति बरसाती है और इस बरसी हुई ज्योति से ही भीज कर हृदय शाति पाता है।

विरही के दुःखो की रात घोरतम अँधेरी हो चुकी अब वह शाति के प्रभात मे बदलने को थी। विरही की भावनाओ मे भी परिवर्तन होने लगता है। वह अपने हृदय को समझाता है—

काहे कों सोचि मरै जियरा परी तोहिं कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआँनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यों सुख जी है।
ऐसे रसामृत पुंजहि पाय कै को सठ साधन छीलर छी है।
जाकी कृपा नित छाय रही दुःख ताप तें बौरे बचाय ही ली है।

और हृदय में व्रजभूमि के दर्शन की अभिलाषा प्रबल हो जाती है। घनानद माधुरी के उस प्रदेश में, जिसके लता-गुल्म तक होने की चाह-प्रेमियो ने की है, यमुना के पावन पुलिन पर पड़े रहने के लिए चल देते है। कृष्ण-लीलाओ की भूमि तथा देश को देख कर उनको अत्यत शाति प्राप्त हुई। एक-एक लीला की स्मृति सजीव होकर उनके सामने आने लगी। वे उसी लीला मे तल्लीन होकर अपने जीवनधन सुजान (राधा और कृष्ण) के गुण-गान करने मे लग गये। एक दिन उन्हे अनुभव हुआ कि मोरमुकुट-पीतवसन धारण किये, अधरो पर मधुर मुरली लटकाये, कोई सामने मुसका रहा है। आनंद की आज सीमा नहीं। जीवन की साध पूरी हो गई—

मीत सुजान मिले को महा सुख अंगनि भोय समोय रह्यो है।
स्वाद जगे रस रंग पगे अति जानत वेई न जात कह्यो है।
द्वै उर एक भए घुरि कै घनआँनँद शुद्ध समीप लह्यो है।
रूप अनूप तरंगनि चाहि तऊ चितचाह प्रवाह बह्यो है।

काव्य-परिशीलन

कविता उद्देश्य विशेष से लिखी हुई भाषा है। भाषा की सार्थकता प्रभविष्णुता मे है। भाव, विचार अथवा मानसिक क्रिया का वह वहन करती है, जिससे वाह्य शब्द-चित्रों की उत्पत्ति श्रोता अथवा पाठक के मन मे होती है। एक प्रकार से वाह्य-चित्र मानसिक चित्रो की पूर्ति अथवा अभिव्यक्ति है। मानसिक चित्रो की ही सूचना शब्द चित्र देते है। शब्द चित्रो की उत्पत्ति ध्वनि-समूह, शब्द अथवा मुहावरा से होती।[1]

कवि का उद्देश्य उस मानसिक क्रिया की अभिव्यक्ति प्रभावोत्पादक ढग से करना होता है, जिसकी सत्यता मे उसे पूर्ण विश्वास रहता है और जिसका सौदर्य वह अपने ही तक सीमित नही रखना चाहता। आतरिक सौदर्य की अनुभूति को कवि सहृदय समाजी मे भी जागरित करना चाहता है क्योकि कविता के आनद की वृद्धि वितरण से ही होती है। इसलिए अपनी भावना को जगत की भावना मे मिलाकर एक कर देने के लिए वह आकुल रहता है। उसकी मानसिक क्रिया ही शब्दो और वाक्यो के रूप मे प्रकट होकर छदो के प्रवाह मे कविता वन जाती है। मानसिक क्रिया ही वास्तव मे कविता की—और क्योकि कविता उद्देश्य विशेष से लिखी हुई भाषा है इसलिए भाषा की—प्राण है। शैली तो उसका वाह्य शरीर मात्र है। किंतु इससे भाषा का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं हो जाता, क्योंकि, मानव-हृदय यदि भावो के छाया-चित्रो के लेने का दैविक यत्र है, तो उनको प्रतिविम्वित करने का यत्र भाषा है।

कवि अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए जीवित शब्दो, मुहावरो, कहावतो और अलकारो मे सोचता है।[2] भावुक कवि की भावना उसकी मानसिक क्रिया से एकमय हो जाती है। भावना की उमंग मे उसकी भाषा स्वत सुंदर हो जाती है, किंतु कवि उसको और भी अधिक आकर्षक वनाने के लिए छद, लय, तुक आदि का उपयोग करता है। ये साधन पाठक के ध्यान को इधर-उधर जाने से रोकते ही भर नहीं है

---

[1] R. V. Jahagirdar—The Comparative Philology of Indo-Aryan Languages p. 36

[2] Own Barfield—"When words are selected and arranged in such a way that their meaning either arouses, or is obviously intended to arouse, aesthetic imagination, the result may be described as poetic diction. Imagination is recognizable as aesthetic, when it produces pleasure merely by its proper activity," Poetic Diction P. 13.

वरन् अपने नाद सौन्दर्य से उस मूल भावना में उसे रमा भी देते हैं जो काव्य की आत्मा, छंद का प्राण और कवि की अभीष्ट प्रेषणीय अनुभूति है।

कवि की भावुकता, विश्व को अपने सॉचे में ढालने की चेष्टा अथवा स्वय विश्व में लीन होने की प्रवृत्ति के अनुकूल विशेष दृष्टिकोण अथवा अनेक-दृष्टिकोणों के सामजस्य के अनुसार केन्द्रित एकमुखी अथवा व्यापक बहुमुखी होती है। केन्द्रित भावुकता-प्रधान कवि अपने अनुभवों के चित्रण में ही दत्तचित्त रहते है। उनकी वाणी मुक्तक, गीतिकाव्य के रूप मे ही अधिकतर व्यक्त होती है। किंतु व्यापक बहुमुखी भावुकता का कवि सृष्टि के साथ रागात्मक सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता रखता है। किंतु इस बहुमुखी दृष्टिकोण की व्यापकता में उसका व्यक्तित्व खो सा जाता है। कवि का व्यक्तित्व यदि स्पष्ट रूप से कहीं पाठक के सामने आता है, तो मुक्तक गीतिकाव्य मे ही। 'मानस' तुलसी के विस्तृत ज्ञान, व्यापक दृष्टिकोण, मर्यादा के आदर्श, चरित्र-चित्रण की कुशलता, भाषा के पाडित्य तथा कवि की प्रबंध-पटुता सब कुछ को पाठक के सामने लाता है किंतु तुलसी का हृदय, तुलसी का व्यक्तित्व उसे 'विनय-पत्रिका' में ही मिलता है। घनानद की कविताएँ मुक्तक गीतिकाव्य की रचनाएँ है, जिनमें सगीत और भावनाएँ मिल कर एक हो गई है। कवि की अनुभूतियाँ, आकांक्षाएँ, मनोवृत्तियाँ उनमे अविच्छिन्न रूप से करुण सगीत मे घनीभूत होकर सहज स्वाभाविकता के साथ पूर्ण रूप से व्यक्त हुई है।

कवि की सफलता अपनी भावनाओं की स्पष्ट सुलझी हुई रूप-रेखा, सजीव स्पंदन करती हुई काव्य की भाषा द्वारा प्रकट करने में है। भावुकता तो प्रत्येक प्राणी मे होती है, जिसे वह अवसर आने पर किसी न किसी प्रकार प्रकट करता ही है, किंतु कवि की परिष्कृत, मार्जित और सजीव शब्दावली से अनुप्राणित होने पर उसकी भावना आकर्षक, प्रभावोत्पादक होकर बरबस ही हृदय पर अधिकार कर लेती है। कवि सफलता की परीक्षा विषय और विषयी के सुन्दर सामजस्य की अभिव्यक्ति मे है। जिस वस्तु की जितनी ही अधिक गहरी सुलझी हुई रूप-रेखा कवि के हृदय में होगी उतनी ही सरल स्वाभाविक और सुन्दर अभिव्यक्ति कवि की वाणी की होगी। प्रेषणीयता जिस काव्य में जितनी ही अधिक होगी वह उतना ही अच्छा काव्य होगा। अभ्यास से की गई कविता मे वाह्य रग-रूप आ सकता है किंतु वास्तविकता भी उस में होगी यह नहीं कहा जा सकता। कविता, ससवेद्य हृदय का व्यापार है। सच्ची स्पदन करती हुई सजीव कविता वही है जिसमे कवि अपने वर्ण्य-विषय के साथ एकाकार हो जाता है। घनानद की सब मनोवृत्तियाँ सुजान कृष्णाभिमुख होकर जागरित हुई थी, इसलिए उनकी कविता मे वह तन्मय करने वाली स्वाभाविक सजीवता है जो रीतिकाल के अधिकांश कवियो की जीविकोपार्जन तथा यश-प्राप्ति के लिए की गई परिश्रम-प्रसूत कृत्रिम कविता में ढूँढने से भी नही मिलेगी। इन कवियो में उक्ति-वैचित्र्य का चमत्कार भले ही चरम उत्कर्ष को पहुँच गया हो, किंतु हृदय को तन्मय कर देने वाली वह स्वाभाविक सजीवता उनमें कहाँ है जो घनानंद की कविता की प्राण है।

घनानद की कविता मे उनके प्राण बोल रहे है। उनकी आशा-निराशा, सुख-दु ख, धैर्य-गम्भीरता की करुण कहानी उनकी कविता आँसू बहा बहा कर सुनाती है।

अपनी रचना के आरभ मे ही कृष्ण-काव्य के अधिकारी श्रोता-वक्ता के विषय मे कहते हुए वे अपने हृदय का परिचय दे देते है—

> नेही महा, ब्रजभाषा प्रबीन, औ सुदरतानि के भेद कौं जानै ।
> जोग वियोग की रीति मै कोविद, भावना भेद स्वरूप कौं ठानै ॥
> चाह के रंग मे भींज्यो हियो, बिछुरें मिले प्रीतम सांति न मानै ।
> भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै ॥

कवि के लिए 'महानेही' होना अत्यत आवश्यक है क्योकि भावना की तल्लीनता महानेही मे ही हो सकती है। और भावना की तल्लीनता ही कविता-को सजीव बनाती है। महानेही का नेह भी वियोग मे ही पूर्ण विकसित होता है[1]। इसलिए भावुक को ऐसी विरह अनुभूति का कोविद होना चाहिए जिसमे बिछुरे प्रीतम के मिलने पर होने वाली शाति ही अतिम उद्देश्य नहीं होती। ऐसा विरही प्रीतम के शरीर मात्र को नही देखता वरन् उसके अतर से अतरतम प्रदेश मे छिपे प्राणो को पहचानने के लिए आकुल रहता है। वह कविता के रूप—छद, शब्द—आदि पर ही नहीं रुका रह जाता वरन् कविता की आत्मा को पहचानने का भी प्रयत्न करता है। और कविता का उदय भी यथार्थ मे विरह से ही होता है—

> वियोगी होगा पहला कवि,
> आह से उपजा होगा गान।
> उमड़ कर आँखों मे चुपचाप,
> बही होगी कविता अनजान।
>
> —पंत

विरही हृदय मे जो भावना घनीभूत होती है वह एक न एक दिन आँसू के रूप मे प्रकट होकर रहती है—

> जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति सी छाई ।
> दुर्दिन मे आँसू बनकर, वह आज बरसने आई ॥
>
> —प्रसाद

किंतु कवि को आँसुओ से अधिक बल अपनी वाणी का होता है।[2] यद्यपि वेदना

---

[1] मिलन अंत है मधुर प्रेम का, और विरह जीवन है ।
विरह जीवन की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है ॥

[2] कविहिं अरथ आखर बलु साँचा ॥ —तुलसी

के आधिक्य में वाणी मौन हो जाती है[१]। किंतु उसकी भी एक सीमा होती है। कहाँ तक कोई वेदना को छिपा सकेगा[२]। दु ख के बखान करने के लिए हृदय रसना का मुख ढूंढता ही है[३]—

महा निरदई दई कैसे कै जिवाऊँ जीव,
वेदन की बढ़वारि को कहाँ लौ दुराइये।
दुःख के बखान करिवे कों रसना कैं होति,
ऐये! कहूँ वाको मुख देखन न पाइये॥

किंतु कवि दु.ख के बखान करने मात्र को रसना नहीं चाहता, वह अपनी अनुभूति के सौदर्य को अमर रूप देना चाहता है। अपने अतर्जगत के सत्य सौदर्य को प्रत्यक्ष मूर्त रूप मे ठीक-ठीक देख कर ही उसे संतोष होता है। किंतु अमूर्त भावना को मूर्त शब्दो के द्वारा पूर्णतया व्यक्त करना कठिन ही नहीं असभव सा होता है, इसलिए कवि प्रतीक, सकेत, व्यजना, छंद तथा अलकारादि से काम लेता है। वह अपनी तल्लीनता, प्रतिभा, साहित्य-साधना, और अनुभूति से भाषा को अधिक से अधिक अभिव्यंजक बनाता है, जिससे वह उसकी अनुभूतियो का भार वहन कर सके।

साधारण बोलचाल की भाषा से जीवित शब्दो, मुहावरो, कहावतो को चुन कर कवि उन्हे अपनी भावनाओ से सरस कर देता है। उसकी भाषा मे अधिक अर्थ देने की शक्ति इसीलिए आती है। किंतु वह साहित्यिक भाषा के शब्दो का बहिष्कार नही करता। उसे परहेज होता है तो उन शब्दो तथा मुहावरो से जो अपनी शक्ति खो चुकते है। शब्दो के कुशल प्रयोग के लिए, उन्हे सजाने के लिए, 'भावना-भेद' तथा 'सु दरताओ के भेद' से परिचित होना भी कवि के लिए परम आवश्येक है। भावनाओ की बारीकियो के अनुकूल उपयुक्त शब्दो का चयन, शब्दो की सु दरताओ को समझे बिना नहीं हो सकता। शब्दो को शक्ति, लोक-जीवन तथा सहृदयो की भावना से मिलती है।[४] भावना की तीव्रता योग और वियोग की रीति में कोविद

---

[१]वाणी वदवी न गमे, मूक भार वहुँ डरे। —नरसिंहराव
(when the heait is full the mouth is dumb)

[२]अर्थ तुझे भी हो रही पद प्राप्ति की चाह।
क्या इस जलते हृदय में नहीं और निर्वाह॥ —'साकेत'

[३]तदपि वाणी रूप माँ, ए भार उर हलको करे॥ —नरसिंहराव।

[४]Kail Biitton—

"A poet may be supposed to be a person who has usualy intense and varied emotions and besides this, to be one who associates those

महानेही (सहृदय) मे ही अधिक स्पष्ट और संस्कृत होती है। इसलिए कविता का पूर्ण आनद लेने के लिए कवि तथा पाठक दोनो के लिए सहृदय होने के अतिरिक्त साहित्य-शास्त्र तथा भाषा का विशेष ज्ञान परम आवश्यक है। किंतु साहित्य-शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता से यह अभिप्राय नहीं है कि उसी की परपरा का अब अनुकरण किया जाय। भावना का स्वच्छद विकास भी परम आवश्यक है। इसलिए अपने एक सवैये मे और सब कुछ कह देने के बाद घनानद ने स्वच्छद रहने की बात कही है—

भाषा प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी[1] के कवित्त बखानै।

इस सवैये मे एक और ध्यान देने की बात है। वह है 'ब्रजभाषा प्रवीन' के उपरात 'भाषा प्रवीन' लिखने का अभिप्राय। घनानद के समय मे साहित्य की प्रधान भाषा ब्रजभाषा थी जिसको सूर, नददास, हितहरिवश आदि कृष्ण-भक्ति के कवियो ने अपनी प्रतिभासपन्न भक्ति-भावना से पर्याप्त रूप से सपन्न कर लिया था। बोल-चाल की भाषा से अब यह भाषा दूर पड़ती जा रही थी इसलिए कृत्रिम नीरस सुकुमारता को स्वाभाविक सरलता के सौंदर्य से सपन्न करने की भी नितात आवश्यकता हो गई थी। इस आवश्यकता को घनानद ने पहिचाना था। वे जानते थे कि बोल-चाल की भाषा मे शब्द समर्थ लेखक की प्रतीक्षा करते है और उसके हाथो लगते ही पुलकित हो भाषा में खिल उठते है। रीतिकाल के कलाकार जब भाषा की इस

---

emotions with words which powerfully affect the feelings of other. So that the poet doubtless uses his words, as we all use ours, to gain sympathy or to arouse antipathy. But we must certainly credit the serious poet with something more he tries to communicate novel emotion to his readers to widen the range of their experience and to order and harmonize them. It is therefore in poetry, especially in lyric poetry, and above all in good lyrical poetry, that we see at its most developed stage, the use of words for the control of emotion"—A Philological study of Language, P. 246-47

[1] 'घन' यदि अपने नाम के अर्थ मे कवि प्रयुक्त करता तो 'जी' लगाने की लालसा उसे न होती। कदाचित् 'घन' शब्द का प्रयोग कवि ने 'घनश्याम' के अर्थ मे किया है। और इस प्रकार 'घन जी के कवित्त' से उसका अभिप्राय अपनी कृष्ण-विषय कविता से है। इस बात का समर्थन कवि की दूसरी उक्ति 'जग की कविताई के धोखे रहे ह्याँ प्रवीन की मति जाती जकी; समुझै कविता घन आनँद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी' से भी होता है।

विशेपता से आँखे मूंद कर शब्दों के वाजीगर[१] वनने में अपना समय लगाना उचित समझ रहे थे तब उन्हें सचेत करने के लिए उनसे यह कहने की आवश्यकता थी—परपरा की रुढियो मे पडे रहने से कोई भी भाषा सपन्न नहीं हो सकी है। और संपन्न भाषा के अभाव में किमी भी भावना का सौंदर्य कभी खिल नहीं पाया है। यदि भावनाओं के स्वरूप को देखने की अभिलाषा मन में है, सौंदर्य की वारीकियो को वाणी देकर अमर वनाने की आकाक्षा है तो साहित्यिक-भाषा के साथ-साथ-ही वोल-चाल की भाषा मे भी प्रवीण वनिये। विना इसके सजीवता की आशा करना विडम्वना मात्र है। घनानद ने इसी चेतावनी को अपने सवैये—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै।
जोग बियोग की रीति मैं कोबिद भावना भेद स्वरूप कौ ठानै।
चाह के रंग मै भींज्यो हियो बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त वखानै।

मे दिया है।

घनानद की विशेपता इस वात मे है कि उन्होंने भाव से प्रधान भाषा को कभी नहीं होने दिया और साथ ही काव्यकला की सब परिष्कृत विधियों को भी स्वाभाविकता के साथ अपनाया है। वे अपनी कविता का निर्माण किसी वादशाह अथवा राजा के वंधन मे रह कर नही वरन् स्वच्छद रह अपने जीवन को वनाने के लिए कर रहे थे। 'लोग है लागि कवित्त वनावत, मोहि तो मेरे कवित्त वनावत' मे उनका यही विश्वास प्रकट हुआ है। उनकी जिस काव्य अभिव्यक्ति मे लोगों को लौकिक शृंगार की कविता दिखाई देती थी उसमे कवि की भावना आध्यात्मिक थी

---

[१] Wordsworth—"The earliest poets of all nations generally wrote from passion excited by the real events; they wrote naturally, and as men feeling powerfully as they did, their language was daring and figurative In succeeding times, Poets and Men ambitious of the fame of poets, perceiving the influence of such language, and desirous of producing the same effect without being animated by the same passion, set themselves to the mechanical adoption of these figures of speech and made use of them, some times without propriety, but much more freequently applied them to the feelings and thoughts with which they had no natural connexion whatsoever. A language was thus insensibly produced, differing materially from the language of men in any situation."

इसकी पुष्टि कवि के ही उस कथन से हो जाती है जो उन्होंने अपनी कविता के योग्य अधिकारियों के विषय मे कही है—

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै पै बौरे लखें सब बुद्धि चकी ।
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी ।
समुझै कविता घनआनँद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी ॥

किसी भाषा की शुद्ध स्वाभाविक सजीवता घनानद मे आई है वह किसी भी मध्ययुग के व्रजभाषा के कवि मे नही पाई जाती है। विदेशी शब्दो को अपनाने की अपेक्षा बोलचाल के शब्दो, मुहावरों, कहावतो तथा नवीन व्यजनाओ द्वारा भाषा की शक्ति को घनानद ने बढाया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

'भाजि न जाय आज यह मोहन सब मिलि घेरौ री ।'

मोहन, और दिन गोपियो से अलग-अलग होरी खेलते थे। गोपियाँ जब उन्हे पकड़ने का प्रयत्न करती थी तब वह 'भाज' जाता था। आज भाजने से पहले ही उसको घेर लेने की बात सोच कर एक गोपी कहती है 'भाजि न जाय आज यह मोहन सब मिलि घेरौ री'। इस वाक्य मे 'भाजि' और 'घेरौ' शब्दो से सारे चित्र मे प्राण आये है। 'भाजि न जाय' मे गोपियो (के हृदय) की जो व्यग्रता और मोहन के जल्दी से खिसक चलने की जो भावना है वह भाजि के स्थान पर 'भागि' या किसी अन्य समानार्थक शब्द रखने से कदाचित् न आ सकती।

'रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मे'

किसी रसीली चीज का इस प्रकार दबना कि उसका रस धीरे-धीरे गिर पडे 'निचुरना' (निचुड़ना) कहलाता है। प्रेमिका मुसका रही है। इस क्रिया मे उसके मुख पर रस-सा निचुड रहा है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि रस 'निचुर' रहा है क्योकि नायिका सलज्ज मुसकुरा भर रही है। यदि मुख खोल कर हँसती तो रस निचुडता नही—छलकता, फैलता या और कुछ होता।

'प्यारे निगोडे की पीर बुरी'

निगोडे प्यार की पीर को बुरी कह कर दुखी प्रेमी का हृदय कितना हलका (न) हुआ होगा? हृदय की व्यथा को व्यक्त करनेवाले प्यार को 'निगोडा' कह कर प्रेमी सतोप की साँस लेता है। प्रेमी की वह व्यथा भरी साँस सुंदर रूप से 'प्यारे निगोडे की पीर बुरी' मे (छिपी हुई) व्यक्त हुई है।

पैड परे पापी ये कलापी निस द्योस ज्यों ही
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै

कलापियो की खुशी, विरही को अपनी विरह दशा मे अच्छी नही लग रही है। वह सोचता है यह सब (नृत्य आदि) उसीको जलाने के तरीके हैं। खिन्न होकर कह

उठता है—ये पापी कलापी तो रात-दिन मेरे पीछे पड़े ही हुए हैं, अरे घातक चातक तू भी कूक-कूक कर मेरे कान फोड़ ले ! 'पापी' और 'तू हूँ कान फोरि ले' से कहने वाले की खीज का पूरा-पूरा पता लग जाता है।

'तेरे बाट आयो है अँगारनि पै लोटिबो,' इस एक वाक्य में कवि ने दो मुहावरों का सफल प्रयोग किया है, 'मुझे मिला है' के लिए 'तेरे बाँट आयो है' और दु:ख के लिये 'अँगारों पर लेटना' कहा गया है। यदि सीधे ढंग से—'तुझे दुःख मिला है' के रूप मे यह वाक्य कह दिया जाता तो भावना की तीव्रता का कहीं संकेत ही न मिलता। भावनाओ की तीव्रता के लिए सफलता से घनानंद मुहावरो का प्रयोग करते है। 'निरधार अधार दै धार मँझार दई गहि बाँह न बोरिये जू', 'साँझ ते भोर लौ तारनि ताकिबो तारन सो इक तार न टारति', 'काहू कलपाय सो कैसे कलपाय है' आदि मुहावरो और कहावतो से अनुप्राणित कथन घनानंद की कविता में भरे पड़े हैं।

सजीव शब्दो, मुहावरो और कहावतो का कुशल प्रयोग भाषा की अर्थद्योतिनी शक्ति को बढ़ाता है, किंतु भाषा-शैली को अधिक मार्मिक, सजीव और चमत्कारपूर्ण बनाने मे कवि की कल्पना की सहायता भाषा की लक्षणा और व्यजना शक्तियाँ ही करती है। लक्षणा के सहारे कवि ऐसी भाषा का प्रयोग बेधड़क कर जाते है जैसी सामान्य व्यवहार मे नही सुनाई पड़ती। घनानंद का भाषा पर इतना अधिक अधिकार था कि वे अपनी भावना के प्रवाह के साथ उसे जिधर चाहते थे उधर बेधड़क मोड़ देते थे। यदि कृष्ण का आलस्य बतलाना आवश्यक है तो कृष्ण की आदत का आलस्य करना कहेंगे—

'अरसानि गही वह बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत है'।

यदि 'दु:ख अकथनीय है' कहना है तो कहेंगे दु ख को वर्णन करने वाली रसना का कहीं मुख ही नहीं मिलता—

दु:ख के बखान करिबे कौं रसना कैं होति
ऐसे ! कहूँ वाकौ मुख देखन न पाइये।

इसी भाँति, 'ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी अनदघन सुरस बरसि लाल देखि हौ हमे हरी', उघरो जग छाय रहे घनआनँद चातक ज्यो तकिए अब तौ', 'मिलत न केहूँ भरे रावरी अमिलताई, हिये में किये बिसाल जे बिछोह छत है,' 'झूठ की सचाई छाक्यो, त्यो हित की कचाई पाक्यो,' 'आनदनिधान प्रान प्रीतम सुजान जू कि सुधि, सब भाँतिन सो बेसुधि करति है,' 'उजरनि बसी है हमारी अँखियनि, देखौ, सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ', 'मौनहू सो देखि हौ कितेक पन पालि हौ जू, कूकभरी मूकता बुलाय आप बोलि है' आदि मे भी वाचोयुक्ति का चमत्कार है।

स्वभाव से ही मनुष्य अलकार-प्रिय होता है। भावना की तीव्रता को साधारण

शब्दो मे प्रकट करने से उसे सतोष नही। सुंदर को अति सुंदर, मूर्ख को महामूर्ख कह देने भर से उसके मन की तुष्टि नही होती। सुंदर मुख को देख कर उसके हृदय में प्रसन्नता होती है। वह उस प्रसन्नता का उपभोग दूसरों के साथ मिल कर करना चाहता है, इसलिए अपनी अनुभूति को दूसरे तक बिना क्षीण हुए पहुँचाना चाहता है किंतु शब्दों की अभिधा शक्ति इस कार्य में अधिक समर्थ नहीं होती इसलिए व्यक्ति शब्दों का लाक्षणिक, साकेतिक तथा अलकारिक प्रयोग करता है, जिससे दूसरे व्यक्ति के हृदय मे भी वह उस घनी अनुभूति की सीमा तक भाव अथवा चित्र को जागरित कर पाता है, जो उसके अपने मानस की उद्वेलित अवस्था मे रहती है। प्रकृति से इस कार्य के लिए वह उपयुक्त वस्तुओ को चुनता है, और उनका उपयोग पाठक तथा श्रोता के लिये अप्रस्तुत चित्र को प्रस्तुत ज्ञान द्वारा उपस्थित करता है। चन्द्रमा और कमल को देख कर साधारण अवस्था मे सभी को प्रसन्नता होती है, इस बात का ज्ञान कवि की सहायता करता है, वह चन्द्रमा और कमल का सामजस्य मुख से करता है और सुंदर मुख को चन्द्रमा अथवा कमल (के समान) कहता है। इसी भाँति 'मूर्ख' को 'गधा' कहने पर उसे सतोष होता है। कौशलप्रदर्शन और भावाभिव्यजन की नूतनतना तथा प्रभावोत्पादकता आदि की प्रवृत्तियाँ नये नये अलकारो की उत्पत्ति करती रहती है। इसी भाँति कठोर अप्रिय, वीभत्स, दु ख-पूर्ण घटनाओ को भी कोमल रूप देने की प्रवृत्ति भी अलकारो को जन्म देती है।

इन विभिन्न प्रवृत्तियो के कारण मनुष्य प्रतिदिन बोलचाल मे अलकारो का प्रयोग करता रहता है, किंतु अपने हृदय की अज्ञात और निगूढ भावनाओ का गान सुनने के लिए उसे कवि के पास जाना पडता है।[1] और जो कवि जितने स्वाभाविक

---

[1] Owen Barfield—Poetic Diction P. 72.

"Men donot invent those mystrious relations between seperate external objects and between objects and feelings, which it is the function of poetry to reveal. Relations exist independently not indeed of thought, but of any individual thinker And according to whether footsteps are echoes in primitive language or, later on, in the made metaphors of poets, we hear them after a different fashion and for different reasons. The primitivemen reports them as direct perceptual experience. The speaker has perceived a unity, and is not therefore himself concious of relation But we, in the development of concious-ness, have lost the power to see this one as one. Our sophistication has cost us an eye, and now it is the language of poets, in so for as they createtrue metaphores, which must restore this unity conceptually after it has been lost from perception."

ढंग से अलंकारादि का प्रयोग करता हुआ हमारी भावनाओ को कविता का रूप देगा, उस कवि से उतनी ही अधिक प्रीति हमे हो जावेगी।

प्रतिभाशाली कवि को कविता मे अलकार लाने का प्रयत्न ऊपर से नहीं करना पड़ता। भावो के उत्कर्ष की व्यजना के लिए, अथवा भाव, दृश्य, गुण तथा व्यापार को स्पष्ट करने के लिए जहॉ जिस अलंकार की आवश्यकता होती है वह स्वत. वहॉ उसकी कविता में चला आता है। भावना प्रधान कवि की कविता में अलकार सहृदय सवेद्य कल्पना के अंग होकर आते हैं। घनानद भावना प्रधान कवि थे इसलिए हृदय संवेद्य कल्पना के सहज सौन्दर्ययुक्त अलकार उनकी कविता में स्वत चले आये हैं, उन्हे उनके लिए प्रयत्न नही करना पडा। नीचे के उदाहरण इस बात के साक्षी है—

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजति काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मे छबि-फूलनि की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै॥
लट लोल कपोल कलोल करें, कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरङ्ग उठै द्युति की, परि है मनो रूप अबै धर च्वै॥

प्रेमी, रूप को देखने में इतना तल्लीन है कि उसे और किसी वस्तु की नही सूझती। वह सुंदर आनन को देखता है। कानो को छूनेवाली मस्त आँखो को देखता है। जब प्रेमी हँस कर बोलता है उस समय प्रतीत होता है जैसे हृदय पर शोभा के फूलो की बरषा हो रही हो। केवल यहॉ पर कवि को फूलो की याद आती है। पर वे फूल शोभा के है, जिनसे हँसी भरे बोलो की मधुरता को रूप सा मिल जाता है। प्रियतम बोल रहे है, जैसे फूल उनके मुख से झर रहे हो, लेकिन वे हँस हँस कर बोल रहे है, जैसे वे फूल खिले हुए हो। लेकिन वे फूल तो शोभा के फूल हैं, और उनके मुख से पृथ्वी पर नही गिर रहे है बल्कि प्रेमी के हृदय मे बिछ रहे है। उनके हँसी भरे बोलो को सुन कर प्रेमी के हृदय को जो प्रसन्नता होती है उसी का वर्णन 'हँसी भरे बोलो' को 'छबि के फूलो' से उपमा देने से हो जाता है। इस सवैये के रूप-सौदर्य के सम्मुख मतिराम के प्रसिद्ध सवैये 'कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै अति अंगन चारु गोराई' की आभा धुँधली पडने लगती है और मन स्थिर दृष्टि से घनानद की सौदर्य मूर्ति के दिव्य चेहरे मे ही लीन होने लगता है।

बिरहा रवि सों घट व्योम तच्यो बिजुरी सी पिवैं इकली छतियॉ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे, उघरे बरसैं दिन औ रतियॉ॥
घन आँनँद जान अनोखी दसा, न लखौ दई कैसे लिखौं पतियॉ।
नित सावन दीठी सु बैठक मैं टपकै बरुनी तिहि ओलतियॉ॥

वर्षा की सारी क्रिया का रूपक विरही की शारीरिक क्रियाओ से बाँधा गया है। सूर्य से आकाश तच जाने पर समुद्र का जल भाप बन कर बादल के रूप मे परिणत हो जाता है। बिजली कौंधती है। दिन-रात मेघ उघड़े बरसते रहते है। घरो में

वैठे प्राणी, ओरी से टपकते पानी से दृष्टि रुक जाने से वाहरी वस्तुओ को देखने मे असमर्थ हो जाते है। प्रिय ट्टी पर जिसकी आँखे लगी हुई है उस विरहिन की अवस्था तो और भी कठिन हो जाती है। उसके लिए केवल बाहर ही बरसात नही शरीर मे भी वरसात वनी है। विरह रूपी रवि से शरीर रूपी आकाश तचा है। छाती की मर्मभेदी पीडा बिजली का काम कर रही है। हृदय रूपी सागर का जल आँखो में मेघ वन कर रात दिन बरसता रहता है। हृदय का सागर ही आँखो के मेघो में उमडा आता है। आँखो मे वसी दृष्टि वाहर कैसे देखे? वरूनियो की ओरी से टपकने वाली बूदे दृष्टि-पथ को रोक लेती है। ऐसी विषम अवस्था है। प्रिय को देख पाने तक मे असमर्थ विरहिन वरसती हुई आँखो के कारण पत्र भी नहीं लिख पाती। यहाँ रूपक के औचित्य से विरहिन की दशा दयनीय दिखाई देती है और उसके प्रति सहानुभूति तीव्र हो जाती है। इस तीव्रानुभूति के साथ ही जव पाठक विरहिन को 'बदरा बरसै ऋतु मै घिरि के नित ही अँखियाँ उघरी वरसैं' कहते सुनता है तो उसके हृदय पर एक मार्मिक ठेस लग जाती है। विरहिन का दुख उसका अपना दुख हो जाता है। इसी भाँति—

अधिक बधिक तें सुजान रीति रावरी है,
कपट चुगौ दै, फिरि निपट करौ बरी।
गुननि पकरि लै, निपाख करि छोरि देहु,
मरहि न जीये, महा विषम दया छुरी।
हौ न जानौ, कौन धौं है या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यों परति प्यारे अंतर कथा दुरी।
कैसे आसा द्रुम पैं बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक निकाई घनआनँद नई जुरी॥

सुजान का वधिक मे और विरही का पक्षी से रूपक बाँध कर क्रिया साम्य द्वारा भाव को अधिक स्पष्ट और तीव्र कर दिया गया है।

रूपक और उपमा का ही नहीं वरन् उत्प्रेक्षा का भी ऐसा ही समर्थ प्रयोग घनानद ने किया है —

अब ताकी ज्वाल मे पजरिबोरे भली भाँति,
नीके आहि असह उदेग दुख सेल सो।
गये उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयो आय औचक वियोग वैरी झेल सो।[1]

---

[1] तुलसी सुनि सिप चले चकित चित
उड्यो मानो विहग वधिक भए भोरे॥

संदेह, अपन्हुति, विषम, प्रतीत, यमक, अनुप्रास आदि अनेक अलंकार घनानद के काव्य में प्रभावोत्पादकता, भाव-तीव्रता, तथा सौदर्य-वृद्धि के उपकरण वन कर इस रीति से आये है कि भाव की तीव्रता और छद की गति के कारण उन पर एकाएक ध्यान नही जाता। भाव की अभिव्यक्ति ही घनानद का मुख्य उद्देश्य था, अलकारो से अपनी कविता को भर देना उस भावुक कवि की प्रकृति के विरुद्ध था, इसलिए अलकारो का जितना समावेश उनकी कविता मे हुआ है वह नैसर्गिक सौदर्य से युक्त है।

शब्दो द्वार भावनाओ का चित्र खींच कर, उसे पूर्ण रूप से हृदयगम कराने में कई कवि सफल हुए है। सस्कृत-साहित्य मे कालिदास, भवभूति प्रभृति ऐसे कवि थे। प्राचीन हिन्दी-साहित्य मे शब्द-चित्र खीचने मे विद्यापति, सूरदास, नंददास और बिहारी प्रसिद्ध है। परुष और कोमल भावनाओ के अनुरूप ही परुप और कोमल शब्दो का प्रयोग करके ये कवि अपनी भावनाओ को मूर्त स्वरूप देकर पाठक को आनद मे निमग्न कर देते है। इसके अतिरिक्त भावनाओ ही के अनुरूप ये छंदो को भी बदलते जाते है। विद्यापति को जहाँ पर कोमल बात कहनी होती है वहाँ पर वे छोटे छद का प्रयोग करते है। नायिका नायक के घर नहीं जाना चाहती। वह शायद जमीन पर बैठ गई है। कहती है, 'नहीं नही, मै नही जाऊँगी,' सखियाँ, जो उसे किसी प्रकार आधे रास्ते तक ले आई है, उससे विनय कर रही है—

सुंदरि चललिहु पहु-घर ना।
चहु दिस सखि सब कर धर ना।
जाइतहु लागु परम डर ना।
जइसे ससि काँप राहु डर ना॥

यदि यही पद दीर्घ कर इस प्रकार बदल दिया जाय—

'सुन्दरि, पहुघर जाइतहु लाग परम डर ना चललिहु'

तो कितना भद्दा हो जाता! इसी तरह विद्यापति को जव, विश्व भर को अपने अखंड धारा-पात से प्लावित करते हुए मेघो का वर्णन करना होता है तव वे दीर्घ साँस लेकर गाने लगते है—

सखि हे हमर दुख क नहिं ओर;
इ भर[1] बादर, माह भादर,
सून मंदिर मोर॥
झँपि घन गरजंति संतत[2].
भुवन भरि बरसंतिया।

---

[1]भरा हुआ, [2]सदा।

कन्त पाहुन काम दारुन
सघन खर सर हन्तिया ॥
कुलिस कत सत[1] पात[2] मुदित
मयूर नाचत मातिया[3] ।
मत्त दादुर डाक[4] डाहुक[5]
फाटि जायत छातिया ॥
तिमिर दिग भरि घोर यामिनि
अथिर बिजुरिक पाँतिया ।
विद्यापति कह कइसे गमा ओब
हरि बिना दिन-रातिया ॥

ऐसी ही बात सूरदास मे भी है। सारी पृथ्वी को अधकार से भरकर, गरजनेवाले बादलो का वर्णन वे यो करते है—

धुरवा धुंध बढ़ी दसहूँ दिसि, गरजि निसान बजायो !

कहना न होगा कि ध, ढ, ऊ आदि महाप्राण अक्षर इस छोटे से पद मे आकाश-व्यापी मेघो का सचय कर देते है। इसी प्रकार शरद की उज्ज्वल प्रफुल्लता का वर्णन वे करते है—

अमल अकास कास कुसुमित छिति लच्छन स्वाति जनाए ।
सर सरिता सागर उज्ज्वल अलिकुल कमल सुहाए ॥

शब्द प्राय. सब ह्रस्व है। क, स, और ल में से कोई न कोई, प्रत्येक शब्द मे आ गया है। स्वर केवल अ, इ, उ ही है। अत के दीर्घ 'आ' और 'ए' अत्यन्त सार्थक है क्योकि क, स, ल आदि वर्णो के खिले काँसो और फूलो की शोभा को वे पृथ्वी के ओर-छोर तक फैला देते हैं। पद के अक्षर-अक्षर मे शरद के फूलो का सा हास छिटक रहा है।

घनानद ने विद्यापति और सूर की भाँति छदो को नहीं बदला है। यद्यपि, दोहा, सोरठा, छप्पय, पद और फारसी छदो मे भी उन्होने कविता की है, किन्तु उनका अधिकाश काव्य सामयिक परिस्थितियो के अनुकूल[6] कवित्त और सवैये मे ही है।

कवित्त और सवैयो मे शब्द-चित्र खींचने में, विद्यापति और सूर के पदो की सी सफलता घनानद को भले ही न मिली हो, किंतु कवित्त और सवैयो के सीमित

[1]कई सौ, [2]गिरता है, [3]मत्त होकर, [4]पुकारता है, [5]पक्षी विशेष । [6]देखिये 'प्रेमकाव्य का विवेचन' ।

क्षेत्र में रहकर भावानुसार शब्द-चित्रण जितना संभव है, वह घनानंद में अवश्य पाया जाता है। 'पाया जाता है' इसलिए कि शायद घनानद ने, विद्यापति और जयदेव की भाँति, शब्द-चित्र खीचने की चेष्टा सजग रीति से कभी नहीं की। वे भावना-प्रधान कवि थे। भाषा पर उनका सफल अधिकार था। रीतिकाल के अन्य कवियो की भाँति उन्होने अपने भावो की कमी को अलंकारो से पूरा करने का प्रयत्न नहीं किया। उनके हृदय में व्यथा का एक अजस्र-स्रोत बह रहा था। उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' था। विद्यापति, बिहारी आदि की भाँति उनका काव्य, प्रशसा आदि पाने के लिए भी नही था। वे अपने काव्य से अपने जीवन का निर्माण कर रहे थे—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहे तो मेरे कवित्त बनावत'। इसी से उन्हे अपनी कविता को जान-बूझ कर सजाने की, शब्द-चित्रो से अलकृत करने की, कभी आवश्यकता भी न थी। फिर भी (अनजान में ही) उनकी भाषा उनके भावो के अनुसार ही चित्र-खींचती हुई चलती है। जैसे—

'तब तो छवि पीवत जीवत हे, अब सोचनि लोचन जात जरे!'

पूर्वार्द्ध में 'ई' का प्रयोग हुआ है जिससे शीतलता का आभास मिलता है। किंतु वह तो पहले की दशा है, अब तो सोच से लोचन जले जाते है। 'ई' से बदल कर 'ओ' पर आना कितना दुखदाई है! उसी सवैये में दूसरा पद है—

हित पोष के तोषतु प्रान पले, बिललात महा दुःख दोष भरे।

तेज आँच पाकर कढ़ाई मे जैसे तेल उबलता है, दुख से प्राण उसी तरह व्याकुल हो रहे हैं। हृदय की इस दशा का चित्रण एक शब्द 'बिललात' कर देता है।

एक दिन किसी गोपी की गली से गोपाल अचानक निकल गये। छवि के भार से वे धरती पर डगमगाते हुए चल रहे थे। सुन्दर वक्ष पर वनमाला थोडा ढरक पड़ी थी, उनकी शोभा कामदेव को लज्जित कर देने वाली थी। अचानक उन्हे सामने पा गोपी चकरा गई, वह हड़बड़ी मे इधर-उधर छिपने की चेष्टा करने लगी। पर उसके हृदय में मोहन के विशाल नयनो की तीखी चितवन चुभी रह गई, और उसका रोम-रोम आनद के रस से सिक्त हो गया। घनानंद इसका वर्णन यो करते है—

डगमगी डगनि धरनि छवि ही के भार
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
सुन्दर वदन पर कोटिक मदन वारौ
चितचुभी चितवनि लोचन विसाल की॥
कालिह इहि गली निकर्‍यो[1] अचानक ह्वै
कहा कहौ अटक-भटक तिहि काल की।

---

[1] 'निकस्यौ' भी पाठ मिलता है।

भिजई हौ रोम-रोम आनंद के घन छाई
बसी मेरी आँखिन मे आवनि गोपाल की॥

वैसे तो इस चित्रण में सभी शब्द सार्थक है पर सबसे सुन्दर 'अटक-भटक' है। इस शब्द से गोपी की हडबडाहट सुन्दर ढङ्ग से व्यक्त होती है। गोपी घबराकर छिपना चाहती है, उसकी इस चेष्टा पर हँसी आये बिना नही रहती।

उक्त कवित्त मे गति अप्रतिहित है। वह एक स्वच्छंद हृदया गोपिका का उद्गार है। एक दूसरा कवित्त लीजिये, पूर्वोक्त कवित्त से कितना भिन्न है!—

वहै मुसकानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लडकाली[1] बानि आनि उर मे अरति है।
वहै गति लैनि और बजावनि ललित बैन
वहै हँसि दैन हियरा ते न टरति है।
वहै चतुराई सौ चिताई चाहिबे की छबि
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है,
आनंदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भाँतिन सौ बेसुधि करति है।

प्रेमी को अपने प्रिय की मुसकान याद आ रही है। कभी उनका मधुर स्वरो मे बात करना याद आ रहा है, कभी उनका नाचते नाचते सहसा ही गति लेना और कभी उनका बाँसुरी बजाना याद आ जाता है। कभी वह सोचता है—उस दिन वह अचानक हँस दिये थे! प्रेमी रुक-रुक कर अपने प्रिय की चेष्टाओ को याद कर रहा है। कवित्त भी उसी तरह रुक-रुक कर चल रहा है। 'मुसकानि', 'बतरानि', 'लड़काली बानि', 'गति लैनि', 'बजावनि ललित बैन', 'हँसिदैन' आदि शब्दो पर पढते-पढते रुकना पड़ता है। अत के पद—'आनद निधान प्रानप्रीतम सुजान जू की सुधि सब भाँतिन सौ बेसुधि करति है' मे 'आ' उसी तरह बार-बार आता है जैसे प्रेमी को अपने प्रिय की सुधि! यह पद पढने मे सुखद है। इसमें पहले पदो की भाँति कही रुकना नहीं पडता—शायद इसलिए कि प्रेमी प्रिय की सुधि मे बेसुध हो जाता है। एक दूसरा कवित्त है—

तब ह्वै सहाय हाय कैसे धौ सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै वियोग दुःख दै चले।
सींचे रस रंग अंग अंगनि अनंग सौंपि
अंतर में विषम विषाद-बेलि वै चले।

---

[1] 'लड़कीली' भी पाठ मिलता है।

क्यों धौं ये निगोड़े प्रान, जान घनआनँद के
गौहन न लागे, जब वे करि बिजै चले ।
अति ही अधीर भई, पीर भीर घेरि लई
हेली मन भावन अकेली मोहि कै चले ॥

इस सारे पद मे एक स्वर प्रधान है। वह है 'ए'। और वह स्वर कुररी के चीत्कार की भाँति हृदय को बेध देता है। अंतिम पद में कितनी व्यथा है।—

हेली मन भावन अकेली मोहि कै चले !

एक दोहे मे घनानद ने आँखो का वर्णन, हृदय-स्थित भाव के साथ, खूबी से किया है—

गोरी तेरे सरस दृग, किधौं स्याम घन आप ।
दावानल सौं पान ये, करत विरह संताप ॥

प्रेमी की, विरह की अग्नि, प्रेयसि के देखते ही बुझ जाती है। इस पर चकित होकर-प्रेमी पूछता है—'सुन्दरी तुम्हारे सरस दृग क्या स्वय श्यामघन है जो मेरे विरह के सताप को, दावानल की भाँति, पी जाते है?' प्रेमी के इस कथन ने, उस सुन्दरी की आँखो का पूरा पूरा वर्णन भी कर दिया है। वे आँखे सरस है, श्यामघन की भाँति काली है, दावानल पान करने से उनमे लाली भी छाई हुई है। विहारी के दोहो की टक्कर का क्या यह दोहा नहीं है?

घनानद ने कवित्त और सवैयो का प्रयोग किया है, किंतु उन पर अपने व्यक्तित्व की पूरी छाप उन्होने छोड़ी है। कुशल कलाकार की भाँति वे अपनी भावधारा को इस ढग से आगे बढ़ाते है कि पाठक भी उसी में बहता हुआ जब अतिम पक्ति पर पहुँचता है तो चरम उत्कर्ष को पहुँची हुई भावना के निखार के साथ-साथ, वह कवित्त अथवा सवैये के 'प्राण-शब्द' को भी पा जाता है, जिससे उसे विशेष आनद मिलता है। कला की यह प्रवृत्ति केशवदास में भी पाई जाती है। प्राण-शब्द के अंतिम पक्ति मे रहने से पाठक की जिज्ञासावृत्ति छंद के अंत तक बनी रहती है और वह पूरे छंद को धैर्य के साथ पढ़ लेता है, और इस प्रकार कवि की उस सारी बात को सुन समझ लेता है, जिसे कवि कहना चाहता है। छंद से इस प्राण-शब्द को हटा देने से अर्थ, कुहास मे छिप जाता है। नीचे के सवैया मे 'जोन्ह' ऐसा ही प्राण शब्द है—

नेह निधान सुजान समीप तौ सींचत ही हियरा सियराई ।
सोई किधौ अब और भई दई हेरत ही मति जाति हिराई ॥
है विपरीति महा घनआनँद अँबर तें धर कौं झर आई ।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सुनई अँग लाई[1] ॥

---

[1] 'अगिलाई' पाठ भी मिलता है।

ऐसे शब्दो[१] में एक विशेषता यह भी घनानद में पाई जाती है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तुओ के प्राण-शब्द छद के अंत मे ही प्राय निकट आते है। 'जोन्ह' के निकट ही 'लाई' ज्वाला है।

घनानद अतर्मुखी प्रवृत्ति के कवि थे, उन्होने अपने बाहर की प्रकृति का उतना ध्यान नहीं किया जितना भीतर की प्रकृति का, फिर भी इधर-उधर जो उनका प्रकृति-वर्णन मिलता है उससे उनकी सूक्ष्म दृष्टि का पता लगता है। उन्होने प्रकृति के बाह्य रूप को उतना नहीं देखा, जितना उसके हृदय को। आतरिक सौदर्य देखने के कारण उन्होने प्रकृति के द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का ही चित्रण किया है। किंतु इस प्रभाव मे प्राकृतिक दृश्यो की छाया मे मानवी भावनाओ का ही व्यापार उदीप्त हुआ है। मानवी भावनाओ से प्राकृतिक सौदर्य की ओर मन को ले जाकर भावनाओ का परिष्कार करने की आवश्यकता घनानद को न थी, इसलिए विद्यापति की भाँति मानव-सौदर्य का प्राकृतिक-सौदर्य से समन्वय करने का प्रयत्न घनानद ने कभी नहीं किया। विरह के आँसुओ से उन्होने प्रकृति को धोया है। प्रकृति के सौदर्य से प्रेम की भावनाओ को नहीं। प्रकृति के सौदर्य से मानवी भावनाओ का परिष्कार करने मे विद्यापति हिन्दी साहित्य के कवियो में सब से आगे बढे हुए है। 'अभिराम नवयौवन-वती युवती के अग-अग से सौदर्य फूट रहा है। नयन, मुख, शरीर की सुगधि, गति, काति और मीठी बोली के प्रतीक हरिन, इन्द्र, अरविन्द, करिनि, हेम और पिक हो रहे है। युग कुचो को स्पर्श करते हुए (शिर के) घने काले बाल खुले बिखरे है, जिन से हार के मोती उलझे हुए है।' इस सौदर्य को देखकर सहृदय आनद विभोर होकर मुग्ध हो जावेगा किंतु सभावना इस बात की भी है कि उसके हृदय मे इस सौदर्य-आश्रय से रमण करने की इच्छा भी जागरित होने लगेगी और सराहनीय सौदर्य को छूने के प्रयत्न से सौदर्य ही नष्ट हो जा सकता है, इसलिए मनोनीत सौदर्य की इस शोभा को मानसिक विकार से अछूता रखने के लिए विद्यापति प्रकृति की शात शोभा के शालीन उपकरणो से कल्पना द्वारा साम्य (उत्प्रेक्षा से) उपस्थित कर मन का सबध स्थिर कर देते है और विकृति की ओर जाने वाला मन शालीन सौदर्य मे तल्लीन होकर नारी के अंगो को भूलकर सौदर्य को ही देखने लगता है और नारी-सौदर्य प्राकृतिक-सौदर्य की छाया मे सदैव के लिए सुरक्षित रह जाता है—

कि आरे ! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा॥

---

[१] 'रसखान और घनानंद' में घनानंद के छन्दों मे ऐसे अनेक छंद है। छंद-संख्या, २०, २१, ३७, ४३, ४६, ८९, १२९, आदि मे यह विशेषता बड़ी खूबी से मिल सकती है।

हरिन इंदु अरविन्द करिनि हेम
पिक बूफल अनुमानी ।
नयन बदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी ॥
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चंद बिहुनु सब तारा ॥

घनानंद ने प्रकृति का उपयोग इस प्रकार से, नारी-सौंदर्य से शरीर का तिरोभाव कर देने के लिए, कही भी नही किया है। इसकी उन्हे आवश्यकता ही न पडी, क्योकि कही भी उन्होंने नारी-सौदर्य मे शरीर की इतनी प्रधानता नही होने दी है कि पाठक के मन मे विकृति होने लगे। किंतु सौदर्य के मन पर पड़ने वाले स्वच्छ प्रभाव की सदैव रक्षा की है। नीचे के कवित्त और सवैये इसके उदाहरण-स्वरूप है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं ।
छबि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं ।
दसन दमक फैलि हियें मोती माल होत
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मै ।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरजानि मैं ॥

झलकै अति सुन्दर आनन गौर छके दृग राजत काननि छ्वै ।
हँसिबोलनि मैं छबि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै ॥
लट लोल कपोल कलोल करैं कल कंठ बनी जलजावलि द्वै ।
अँग अंग तरंग उठै दुति की परि है मनौ रूप अबै धर च्वै ॥

रूप गुन आगरि नवेली नेह नागरि तू
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है ।
अंग-अंग केलि-कला संपति बिलास घन-
आँनँद उज्यारी मुख सुख रंग रिधि है ।
जब जब देखिये नई सो पुनि पेखिये यों
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥

हुलास भरी मुसक्यान लसै अधरानि तै आनि कपोलनि जागै ।
छुटीं अलकैं मृदु मंजु मिहीं स्रु ति मूल छलानि अनी मुरि लागै ।।
बड़ी अखियाँनि मैं अंजन रेख लजीली चितौनि हियै रस पागै ।
सुहाग सों ओपित भाल दिपै घनआँनँद जान पिया अनुरागै ।।

प्रकृति का वर्णन, भावनाओ के उद्दीपक के रूप मे, साहित्य मे अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। वरसा रितु के बादलो का विरही हृदय पर क्या प्रभाव पड्ता है यह कालिदास का मेघदूत सुन्दर से सुन्दर शब्दो मे हमे कब से बता रहा है। हिन्दी-साहित्य मे रीतिकाल के कवियो ने इस प्रकार का वर्णन बढ-बढकर किया हैं, किंतु सब के चित्र सुन्दर नही हुए है। जिसने विरह नहीं देखा वह क्या समझेगा विरह की पीर ? विरही घनानद ने किस खूबी से, किस गहराई से, किस सचाई मे, इस प्रभाव को दिखाया है यह उनके एक सवैये से ही देख (समझ) लीजिये।—बिजली चमक रही है, वादल गरज रहे हैं, चातक का मनोरथ पूर्ण होगा किंतु अधीर विरही का यह सौभाग्य कहाँ! उसके हृदय पर आनद वरसाने वाले वादल यहाँ कहाँ! जीवनमूल सुजान की कौधन तक तो कही नहीं दिखाई दे रही है। विना पावस के ही ओखो को धैर्य नहीं था, वे खुलकर उघड़ी वरसती रहती थीं अब तो पावस जो आ गया है!—

घनआँनँद जीवनमूल सुजान की कौधन हूँ न कहूँ दरसै ।
सु न जानिये धौं कित छाय रहे, दृग चातिक प्रान तपे तरसैं ।
बिन पावस तो इन्हे थ्यावस हो न, सु क्यों करिये अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै, नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥

यमुना का वर्णन एक कवित्त मे घनानद ने किया—

आँखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबेई है ।
गौर-स्याम रूप आद रस है दरस जाको,
गुपित प्रकट भावनो विसेखिबेई है ।
जुग कूल सरस सलाका दीठि परस ही,
अंजन सिंगार रूप अविरेखिबेई है ।
आनंद के घन माधुरी की झर लागि रहै
तरल तरंगिनि की गति लेखिबेई है ॥

यह वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति की दृष्टि नहीं है और न तो अँग्रेज़ी-साहित्य से प्रभावित वर्तमान काल के कवियों की। कवि ने केवल इतना ही कहा है—"तरल तरगों की गति देखते ही बनती है। यहाँ आनद के घन की माधुरी की झड़ी लगी

रहती है। शांत यमुना के हृदय पर मधुर कलरव होता रहता है। शात लहरो मे धीमा-धीमा स्वर उठता रहता है। सलिल-कणों के फेन को लेकर शीतल समीर के झोंके आते रहते है, ऐसा मालूम होता है मानो यमुना के हृदय पर आनद का अदृश बादल आठो पहर पसीजता रहता हो।"

एक चित्र ब्रजभूमि का है—

गुरुनि बतायौ, राधा-मोहन हू गायौ, सदा,
सुखद सुहायो, बृन्दाबन गाढ़े गहि रे।
अद्भुत अभूत, महि मंडन परे ते परे,
जीवन को लाहु, हा हा क्यों न ताहि लहि रे।
आनंद को घन छायो रहत निरन्तर ही,
सरस सुदेस सों पपीहा पन बहि रे।
यमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे॥

'केलि कोलाहल' ने इन पक्तियो मे जान डाल दी है। यमुना के तीर, पुलिन की सिकता पर प्रेमी पड़ा हुआ है, चारो ओर केलि-कोलाहल हो रहा है, भाँति-भाँति के पशु और रग-बिरगे पक्षी चारो ओर कोलाहल कर रहे है, और इस सारी ब्रजभूमि पर आनन्द का बादल छाया हुआ है। किंतु वह हृदय से ही देखा जा सकता है। और जो उसे देख लेते है वे पपीहो की भाँति उसी के चारो ओर घूमते हुए उसे पुकारते रहते है।

घनानंद और रसखान मे काफी भाव-साम्य है। रसखान से घनानंद काफी प्रभावित भी हुए है किंतु फिर भी घनानंद और रसखान में पर्याप्त अंतर है। रसखान प्रेम में मस्त लापरवाह कवि थे। उनकी भाषा भी उनके भावो के अनुरूप सीधी-सादी है। किंतु घनानद के लिए प्रेम संयोग मात्र का खेल न था। उन्होने उसके दूसरे पहलू को भी देखा। दु.ख ने उनके प्रेम को शुद्ध गहरा कर दिया, उनकी भाषा को गभीर और व्यजक बना दिया। उनकी भावनाएँ भी ऐसी है कि आँसू उनका मूल्य नहीं चुका सकते। रसखान ने वियोग के दु.ख को हल्की नजर से देखा है, और केवल बाहर से ही देखा है। पर घनानद अपने भीतर ही लीन हो गए है, उन्हें बाहर देखने की फुर्सत ही नही रही। एक बार वंशी बजाते-बजाते राधा की गली से कृष्ण निकल गए, इसका वर्णन रसखान और घनानद दोनो ने किया है। रसखान की एक सखी दूसरी सखियो से कह रही है—

बंसी बजावत आनि कढ़ो, सो गली मे अली कछु टोना सी डारै।
हेरि चितै तिरछी करि दीठि, चल्यौ गयो मोहन मूठि-सी मारै।
ताहि घरी सों परी घरी सेज पै, प्यारी न बोलति प्रानहूं वारै।
राधिका जी है तो जीहैं सबै, न तो पीहैं हलाहल नंद के द्वारे॥

एक और गोपी के अचेत होने की बात सुनिए—

आज भटू इक गोप-बधू, भई बावरी नेकु न अंग सम्हारै ।
मात अघात न देवनि पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै ।
यों रसखानि घिरयो सिगरो ब्रज, कौन को कौन उपाय विचारै ।
कोउ न कान्हर के करतें वह, बैरिनि बाँसुरिया गहि जारै ॥

किंतु घनानद की एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है—

डगमगी डगनि धरनि छवि ही के भार,
ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की ।
सुन्दर बदन पर कोटिन मदन वारौ,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की ।
काल्हि इहि गली अली निकस्यो[1] अचानक ह्वै,
कहा कहौ अटक-भटक तिहि काल की ।
भिजई हौ रोम रोम आनँद के घन, छाई,
बसी मेरी आँखिन मे आवनि गुपाल की ।

रसखान की राधा मे और घनानद की इस गोपी मे कितना अतर है ! कृष्ण की तिरछी चितवन से घायल होकर राधा तो विस्तर पर पड़ गई, उसने बोलना-चालना छोड़ दिया, किंतु इस गोपी को देखिए। वह कृष्ण के दर्शन को भूलती ही नहीं। उसके लिए वह एक उत्सव है। कृष्ण को देखकर वह आनद से भीग जाती है। कृष्ण की चितवन उसके हृदय मे चुभ जाती है, पर वह बोलना बंद नही करती। अत्यत प्रेम और अनुराग के साथ उस चितवन का वर्णन अपनी सखी से वह करती है—

'बसी मेरी आँखिन मे आवनि गुपाल की।'

घनानद की गोपियाँ रसखान की गोपियो की भाँति अचानक बावली नही हो उठतीं। वे धैर्य न धरने की बात कहती हुई भी अपना धैर्य नही खोती, और अपनी व्यथा को शात भाव से अपनी सखियों को सुनाती है। वे केवल इतना भर कहती है—'सखि, मेरा जो कुछ था उसे वह लूट ले गया, अब मेरे पास मेरा कुछ नहीं रहा—

तब तें न मेरे चित चैन कहूँ रंचक हूँ,
धीरज न धरै सो न जानै धौ कितै गयो ।
नैकु ही में मेरो कछु मो पै न रहन पायो,
औचक ही आइ भटू लूट सी विते गयो ।

---

[1] 'निकस्यौ' तथा 'निकरयो' दोनों पाठ हैं ।

ये गोपियाँ रसखान और घनानंद के प्रेम की भावनाओं की मूर्तियाँ हैं। रसखान की गोपियों में 'अल्हड़पन' की अधिकता है, लेकिन घनानंद की गोपियाँ धीर, शांत, गंभीर और प्रेम की तीव्र वेदना से भरी है।

रसखान के प्रेम में तल्लीनता, पवित्रता है; पर विरह की वह तीव्रता नहीं है जो प्रेम को गंभीरता देती है। किंतु घनानंद इस विरह की गंभीरता के कारण ही उस समय के अन्य कृत्रिम विरह-वर्णन करने वाले कवियों से अलग पहचाने जा सकते हैं। अन्य कवियों की भाँति घनानंद ने शास्त्रीय पद्धति पर प्रेम का वर्णन नहीं किया है, वरन् उनका प्रेम-विरह-वर्णन स्वात्मानुभूति का करुण आत्म-निवेदन है। विरह की आंतरिक दशाओं में होता हुआ उनका प्रेम अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा है। भाव की तल्लीनता में उन्होंने प्रिय का जो रूप देखा, उसमें शारीरिक सौन्दर्य से कहीं अधिक मानसिक सौंदर्य है। प्रिय के शरीर से परे वे हृदय के आनंद को पहचानने में समर्थ हुए है। उनके प्रेम की सांसारिकता विरह के आँसुओं में धुलकर उज्ज्वल राधा-कृष्ण-भक्ति की आध्यात्मिकता में परिणित हो गई है।

घनानंद की कविताओं में भाव और विचार की स्वाभाविक तीव्रता का निखार प्रायः अंतिम पंक्ति में हुआ है, ऐसे स्थलों पर छंद बहुत ही सुंदर है। किंतु जहाँ उमंग धीमी पड़ी है वहाँ अंतिम पंक्तियाँ समस्या पूर्ति के छंदों की सी लगती हैं।[1] किंतु कहीं-कहीं इस अंतिम पंक्ति को केन्द्र बना 'अष्टक' या 'पंचक' भी बनाते गए हैं।[2] यह शैली अत्यंत प्राचीन है और आज भी इसका अंत नहीं हो गया है। मैथिलीशरण गुप्त इसका खूब प्रयोग करते है। 'साकेत' की मैथिली को 'मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया' गुनगुनाते हम आज भी सुन सकते हैं। गीतों में तब तक कवि केन्द्रित भावना पर पँखुड़िया सजाता रहता है जब तक उसे संतोष नहीं हो जाता।

कहीं-कहीं घनानद के काव्य पर दूसरे कवियों की छाया भी लक्षित होती है। ऐसे स्थलों पर भी प्राण घनानद के ही है, शरीर चाहे किसी और का क्यों न हो। मेघदूत के कई स्थलों की छाया घनानद के कवित्तों में दिखाई दे सकती है। जैसे—

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोध विश्लेषितस्य।
गंतव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्।
वाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।

तथा

कः संनद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम्।
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।

---

[1] देखिये 'रसखान और घनानंद' पृष्ठ ६७, छंद १७४

[2] ,, ,, ,, पृष्ठ १०४ छंद ४२० से ४२४ तक

और

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्

आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।

इन श्लोको का साम्य क्रमश

पर काजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।

निधिनीर सुधा की समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ ।

घनआँनँद जीवनदायक हौ कछु मेरियौ पीर हिएँ परसौ ।

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहिँ लै बरसौ ।

तथा

कंत रमै उर अंतर मै सु लहै नहीं क्यों सुख रासि निरंतर ।

दंत रहै गहे आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचै परतंतर ।

और

इक तौ जग माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जो मिलाप की बास खिलै ।

तिहि देखि सकै न बडो विधि क्रूर वियोग समाजहि साज सजै ॥[1]

से है । और 'कुमारसभव' की शिवध्यान मे आठ पहर, चौसठ घड़ी डूबी रहने वाली सती की जिस दशा को कालिदास ने दिखलाया है—

त्रिभाग शेषासु निशासु च क्षणं,

निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत ।

क्व नीलकंठ व्रजसीत्य लक्ष्यवाक्,

असत्य कंठार्पित बाहु बंधना ।

वही घनानंद ने अपनी गोपिका में इन शब्दो मे दिखलाई है—

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतियाँ ।

भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष अनेक भरी छतियाँ ।

सभवत. 'मेघदूत' ने घनानद को 'पवनदूत' की सुझाई और पवन को भाई बनाकर विरही कवि कहता है—

---

[1] सपनेहुँ संगम पाओल रंग बटाओल रे ।

से मोर विहि विघटाओ निंदओ हेरायल रे ।

—विद्यापति

एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन वारी
तो सो और कौन मनै ढरकौहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान
घनआनँद निधान सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे गुन भारे अतिमोही प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
विरह विथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि
धूरि तिन पायनि की हा हा नैकु आनि दै॥

('पवनदूत' और 'मेघदूत' का विचार तो वाल्मीकि और कालिदास के समय में भारत में फैला हुआ था अब 'रेलदूत' भी चलने लगे हैं।) 'परकाजहि देह को धारि फिरौ' वाले कवित्त को शरीर चाहे 'संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः' से ही [illegible] हो किंतु उसके प्राण 'कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहिं लै बरसौ' कालिदास ने दिये हों इसमें संदेह है। मेघ से यह प्रार्थना करना कि—हे जीवनदातार तुम अपने हृदय में कुछ मेरी पीड़ा का भी अनुभव कर उस बिसासी (अविश्वासी, विश्वासघाती) के आँगन में मेरे आँसुओं को ले जाकर बरसा दो—उस यक्ष के मन में नहीं था जो कि चार ही महीने के बाद अपनी उस विरहिणी प्रियतमा से मिलने वाला था जो ड्योढ़ी पर फूलों को बिछा-बिछा कर अवधि के दिन गिन रही थी। यह तो वह निराश प्रेमी ही कह सकता है जिसे प्रिय मिलन की आस नहीं है फिर भी जो एक सी बाट देख रहा है। यही बात 'एरे बीर पौन' वाले कवित्त में भी है—प्रेमी पवन से यह नहीं कहता कि तू उनके अलकों की सुगंधि उड़ा कर ला और मेरे हृदय को सुरभित कर दे।[1] वह केवल उस तुच्छ धूल को सर-माथे लगाने के लिए लालायित है जो आँखों में बैठ कर दुःख देती है। उसकी विरह-व्यथा उसी से शांत हो जाती। घनानंद की अंतर-व्यथा दीन विरही की 'मौन मैं पुकार' अथवा दुखी की करुण चीत्कार है।

---

[1] '[illegible]—
आलिंगन् पवन मम स्पृशन्नंगमंगम् ॥
—'मालती-माधव'

प्रेमकाव्य के अन्य कवि
और
घनानंद

खडीबोली के इस उत्कर्ष काल मे जब जीवन की धारा एक बारगी ही बदल गई है, पश्चिमी ज्ञान और विज्ञान के धक्को से, इतिहास के आलोक मे जब शताब्दियो से राधा-कृष्ण के एकातिक मदिर के आँगन मे बैठे हुए पुजारियो के अगे नवीन-नवीन देवता पूँजा पाने के लिए आकर खडे हो गये है, प्राचीन कवियो के प्रति न्याय करना असभव सा हो गया है। इसी देश के निवासी होने पर भी प्रसाद और घनानद, सूरदास और सुमित्रानदन पत मे प्राय उतना ही अतर है जितनो पृथ्वी के दो कोनो मे पैदा हुए आदमियो मे होता है। राधा और कृष्ण की आड़ मे अपनी तथा अपने आश्रयदाताओ की वासनाओ को कविता का रूप देनेवाले कवियो का तो अब कही भी आदर नही। इने-गिने रसिक साहित्यिको को छोडकर रीति-काल के इन कवियो पर कम लोगो का ही मोह रह गया है। फिर भाषा की भी एक अड़चन है। खडीबोली के अधिकाधिक प्रचार के साथ-साथ ही ब्रजभाषा अधिकाधिक दुरूह होती चली जा रही है। इतना सब होने पर भी यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि जब तक संसार मे प्रेम रहेगा, प्रेम की भावना और करुणा मनुष्यो को पिघलाती रहेगी तब तक प्रेम-काव्य और उनके कवियो का आदर होता रहेगा। विप को लोग अमृत की ढूढ के लिए पीकर आगे बढते ही रहेगे, भापा की दुरूहता के पर्वतो को भी लोग लाघेगे और सौदर्य के लोक मे पहुँचकर जिस अमृत-तत्व की प्राप्ति करेगे उसके द्वार विश्व के लिए भी खुल जावेगे।

रीति-काल के कवियो मे प्रेम के सयोग पक्ष को अनेक कवियो ने सरसता के साथ अकित किया है किंतु अनुभव किये हुए विरह के गीत घनानद के अतिरिक्त किसी भी रीति कालीन कवि ने सभवत. नहीं गाये है।

प्रेमकाव्य के अन्य कवि और घनानंद

१

पूर्ववर्ती तथा समसामयिक कवि

और

घनानंद

घनानंद के समसामयिक तथा पूर्ववर्ती प्रेम-काव्य के कवियो को दो श्रेणियो में विभक्त किया जा सकता है—

(१) लौकिक (व्यक्ति-उन्मुखी) प्रेम के कवि।

(२) अलौकिक (ईश्वरोन्मुखी) प्रेम के कवि।

दूसरी प्रकार के कवियो को भी (१) वैष्णव भावना के कवि और (२) रहस्योन्मुखी प्रेम के कवियो के अतर्गत दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है।

हिन्दी के आदि युग के सिद्ध, नाथ, जैन कवि रहस्योन्मुखी कवि थे जिन मे चाहे अप्रधान और गौण रूप से ही क्यो न हो प्रेम की भावना किसी न किसी अग मे योग, तत्र और दार्शनिकता की तह में छिपी मिलती है, किंतु यह धारा इतनी धुँधली और खोई हुई सी है कि उसको घनानद की प्रमुख प्रेम-भावना के सम्मुख लाया भी जाना उचित नही है।

वीर और प्रेम-काव्य के युग मे लौकिक व्यक्ति-उन्मुखी प्रेम के दर्शन घने रूप मे होते है लेकिन शृगार का यह काव्य इतना व्यापक और जीवन की शक्तियो से युक्त है कि उसे अतमुँखी रहस्यवादी धारा के अतर्गत नही ला सकते है।

सूफियो तथा निगुँणियो की परंपरा ने जिस प्रेम-मार्ग का अनुसरण किया है उसमे विरह की रहस्योन्मुखी तीव्र अनुभूति का विशेष महत्त्व है। घनानद को यदि हम वैष्णव भावनाओ से प्रभावित हुआ भी पाते है किंतु इसमें सदेह नही कि वे मूलतः रहस्योन्मुखी प्रेम-काव्य के कवि है और सूफी तथा निगुँण-प्रेमी कवियो के अतर्गत मीरा की भाँति आते है। मीरा जिस प्रकार बाह्य रूप से परम वैष्णव सगुण भावना की दिखलाई देती है किंतु उसका प्रेम रहस्योन्मुखी अनत सत्ता—जिसे वह पिय, गिरधर गोपाल, प्रभु आदि-आदि शब्दो से सबोधित करती है—की विरह-वेदना की विकलता का साक्षी है, उसी भाँति घनानद चाहे कृष्ण के तथा राधा के सगुण रूप का, उनकी कृपा का, उनकी लीलाओ का सजीव प्राणो को प्रसन्न कर देने लाला गुण-गान करते है, किंतु प्रधानता उनमे उस विरह भावना की मर्मस्पर्शी विकलता की

है जो जायसी (1498—1591), इमाशाह (1449AD), कबीर (1399AD—1575 AD), मीरा 1403AD—1574AD), दादू (1544—1603AD), नानक (1459—1538AD), बाबा लालदास (1648AD) सरमद आदि प्रेम-मार्गी संतो मे पाई जाती है। इसीलिए घनानंद का काव्य रसखान (c1506AD—c1623AD), सूर (1513 AD—1573AD), तुलसी (c1497AC—1623AC), वैष्णवधारा के कवियो के साहित्य से उतना मेल नही खाता जितना प्रेम-रहस्योन्मुखी सतो की विरह-वाणियो से।

वैष्णव काव्य-धारा मे रूप-सौदर्य की शात स्थिरता, प्रेम की भावना को उद्वेगपूर्ण होने का अवकाश नही देती है इसलिए विरह की भावना वैष्णव कवियो में स्वतत्र होकर मुखरित नहीं होती है, वरन् रूप-सौदर्य को देखने मे तल्लीन रहने के कारण सदैव आनद रस की शीतलता लिये रहती है। विरह की अनुभूति वैष्णवो को ज्वाला के रूप मे ही होती है इस कारण उनके साहित्य मे विरह का वह स्वरूप नही पाया जा सकता, जो मन के लिए किसी स्थिर रूप-सौदर्य की घनीभूत आनदमूर्ति के अभाव के कारण रहस्योन्मुखी प्रेमी कवियो को सदैव विकल किये रहता है, और आतरिक उद्वेग तथा दाह बन कर उन्हें भस्मीभूत किये रहता है।

कबीर, जायसी, दादू आदि जहाँ विरह की अग्नि मे हाड़-मास को जला कर किंगरी बनकर भी अज्ञात को न पा सकने की बात कहते है वहाँ रसखान, सूर, तुलसी आदि प्रेम के आनदाश्रुओ से पुलकित हो-होकर अपने सगुण-साकार रूप रस के अजस्र स्रोत कृष्ण और राम को देखने में सब कुछ पा जाते है।

घनानद ने सभवत निर्गुण प्रेम-भावना के कवियो-सतो तथा सगुण-रूप रस परपरा के भक्तो के जीवन के तात्विक भेद को अपने लिए स्वय दोनो प्रकार का जीवन बिता कर देख समझ लिया था और इसीलिए आगे चलकर सभवतः वे रहस्यवादी प्रेमी कवियो-संतो की भावना से हटकर सगुण रसवादी वैष्णवो की परपरा मे आ जाते हैं। फलस्वरूप घनानद की रचनाओ मे जहाँ विरह की विकलता, प्रेम की ज्वाला और विरही की अंतर्दशाओ के प्रखर चित्र है, वहाँ शात-स्निध-शोभा के रूप-रस-पूर्ण शीतल चित्रो की भी कमी नहीं है। और वे वैष्णव भावनाओ के कवियो के अतर्गत भी इस प्रकार से आ जाते है।

प्रेमकाव्य के अन्य कवि और घनानंद

२

विद्यापति और घनानंद

विद्यापति सस्कृत साहित्य के प्रकाड पडित और रसिक प्रवृत्ति के कवि थे। जयदेव से पाये हुए राधा और कृष्ण को ही उन्होंने प्रखर रसिकता से रजित कर दिया। राधा और कृष्ण का जो चित्र उन्होने खीचा है उसमे वासना का रग बहुत प्रखर है। कृष्ण और राधा भक्तो के सर्वस्व न रहकर रसिको के सर्वस्व हो गये है। विद्यापति की राधा के दर्शन हमे उस समय होते है जब वह शैशव से यौवन के द्वारो पर आ रही थी। शैशव और यौवन दोनो एक दूसरे से जूझ रहे थे। एक उसके केशो को ढक देता था दूसरा विथुरा देता था,[1] एक उसे हँसाता था तो दूसरा उसके मुख पर आँचल ला देता था,[2] एक उसकी आँखो को कोनो की ओर फेर देता था तो दूसरा उसके आँचल को धूल मे गिरा देता था,[3] देखते ही देखते यौवन विजयी हो जाता है। चरणो की चपल गति अब लोचनो मे आ जाती है,[4] मुकुर ले श्रृगार करने का अब नित्य नियम हो गया है।[5] चित्त लगा कर अब वह रस कथा सुना करती है।[6] उसकी शोभा देखकर सब चकित हो रहे है। उसके अभिराम यौवन[7] को देखकर त्रिभुवन के लावण्यसार कृष्ण तक मूर्च्छित हो गये है।[8]

और अब राधा एक विचित्र खेल शुरू करती है। वह गज-गामिनी, सखियों के

---

[1]कबहुँ बाँधए कच कबहुँ विथारि पृ० ८; ५।४ पदावली—विद्यापति; लहेरिया सराय, तृतीय संस्करण

[2]खने खने दशन छुटा छुट हास पृ० १२; ८।३
खने आँचर दए, खने होय विभोर पृ० १२; ८।८

[3]खने-खने नयन कोन अनुसरई पृ० १२; ८।१
खने-खन बसन धूलि तनु भरई पृ० १२; ८।२

[4]चरन चपल गति लोचन लेल पृ० १०; ७।२

[5]मुकुर लई अब करइ सिगार पृ० ७, ४।५

[6]सुनत रस कथा थापय चीत पृ० १०; ७।६

[7]कि आरे! नव जौवन अभिरामा! पृ० १६; ११।१

[8]मुरछि परल खितितल लावन-सार।

साथ चलती हुई पलट कर कृष्ण को देख हँस देती है।[1] श्वास से कभी उसका अँचल उठ जाता है और उसकी तड़ित लता सी देह कृष्ण को दीख पड़ जाती है।[2] कभी घाट पर स्नान करती हुई वह कृष्ण के हृदय पर पंचबाणों की वर्षा कर देती है।[3] उसकी वाक्पटुता का क्या कहना! एक दिन कुंज-भवन से बाहर निकल कर क्या देखती है कि कृष्ण उसकी राह रोके खड़े है और टलते नहीं। वह दुहाई देने लगती है—कहती है—'माधव तुम्हारे ही नगर मे रहती हूँ बटमारी मत करो।'[4] एक दिन घाट पर उसकी सखियाँ उसे अकेली छोड़कर चली गईं, लेकिन कृष्ण वहीं थे। वह बड़ी मिन्नत करती है। कहती है—"कन्हैया मुझे पार कर दे, तुझे एक हार दूँगी।"[5] और अंत में कृष्ण जब एक दिन उससे सुरत माँगते है तो वह आश्चर्य प्रकट कर कहती है—"वह सुरत नाम का आदमी कहाँ रहता है?"[6]

विद्यापति की राधा, यौवन की मूर्तिमती वासना है और कृष्ण मूर्तिमान यौवन।

विद्यापति उत्तेजक सौंदर्य के चित्र उतारने मे अद्वितीय है। उनके अधिकाश सौंदर्य-चित्र उत्तेजक और उद्दीपक है। और कोई-कोई तो साधारण जनता की अश्लीलता की सीमा तक उतर आये है, किंतु घनानद का दृष्टिकोण विद्यापति से भिन्न ही था। घनानद ने मन पर पड़ने वाले सौंदर्य के शात प्रभाव की वेदना को वाणी दी है। कहीं भी उन्होने विद्यापति की भाँति प्रेम के उत्तेजक और उद्दीपक स्वरूप को नहीं चित्रित किया है। घनानद मे प्रेम की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाएँ किसी न किसी अश तक अनुभूति की आध्यात्मिकता के साथ व्यक्त हुई है। किंतु विद्यापति में धार्मिक भावना थी भी या नहीं इसमे सदेह है। विद्यापति की पदावली यदि धार्मिक उत्सवो पर भक्तो को रोमांचित कर देती है, तो इसका कारण भक्तो का पदावली को देखने का दृष्टिकोण है, अन्यथा आदि से अत तक विद्यापति की पदावली पढने से यही जान पड़ता है कि यह रचना किसी साहित्य-शास्त्र-कोविद कवि की है, भक्त की

---

[1]गेलि कामिनि, गजहु गामिनि, बिहसि पलटि निहारि पृ० ४४; ३२।१

[2]ससन परस खसु अम्बर रे, देखल धनि देह पृ० ४१; २६।१

[3]कामिनि करए सनाने, हेरितहि हृदय हनए पँचवाने पृ० ३३; २३।२

[4]कुंज भवन सयँ निकसलि रे, रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बस माधव हे, जनि कर बटमारी ॥ पृ० ८४; ६६।२

[5]कर धर करु मोहे पारे,
देब मैं अपरुब हारे, कन्हैया ॥ पृ० ८३; ६८।२

[6]सुरत क नाम सुनल हम आज,
न जानिअ सुरत करए कौन काज ॥ पृ० ११४; ८४।४

नही। विद्यापति ने यदि किसी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर पदावली की रचना की होती, तो उन्हे पद-पद पर किसी राजा-रानी की दुहाई देने की आवश्यकता न पड़ती और न वृद्धावस्था मे अपनी विलासी वृत्ति से निराश होकर—

तातल सैकत बारि-बिन्दु सम सुत बित रमनि समाजे।
तोहि बिसरि मन ताहि समर्पल अब मझु होब कोन काजे।
माधव हम परिनाम निराशा।

कहने की ही नौबत आती। फिर पदावली में दांपत्य-शृंगार ही का वर्णन है, मधुर अध्यात्म का नहीं। डा० ग्रियर्सन, डा० जनार्दन मिश्र तथा कुमारस्वामी को विद्यापति के पदो मे अध्यात्म-भावना दिखाई दी, किंतु वय:-संधि का वर्णन तो अध्यात्म के लिए आवश्यक नहीं। विद्यापति में अध्यात्मवाद ढूँढ़ना वहाँ अध्यात्मवाद ढूँढना है, जहाँ हमे उसे नहीं ढूँढ़ना चाहिए। अभिव्यक्ति घनानंद की भी लौकिक अवश्य है, किंतु कवि की भावना धार्मिक थी इसका संकेत उसने—

लोग है लागि कवित्त बनावत मोहे तो मेरे कवित्त बनावें।

तथा

जग की कविताई के धोखे रहे ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनँद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी।

आदि में दिया भी है।

प्रेमकाव्य के अन्य कवि और घनानंद

३

रीति-काल के कवि और घनानंद

विद्यापति की काव्य-धारा का अनुसरण रीति-काल के कवियो ने बढ-बढकर किया। केशव, देव, मतिराम आदि शृगारी कवियो ने सयमहीन रसिकता का परिचय अपनी कविताओ मे दिया और भावना की पवित्रता से वचित कर कृष्ण और राधा को कामुको की श्रेणी मे जा ढकेला। शृगार के विलासी गर्हित पक्ष को ही देखने की पैनी दृष्टि इनमे थी इसलिए वास्तविक सयत सयोग और वियोग की अनुभूति से हीन इन कवियो ने संयोग और वियोग का जो काल्पनिक ढाँचा खड़ा किया उसमे बुद्धि के एक से एक चमत्कार दिखाकर अस्वाभाविकता उत्पन्न करने में तो वे अवश्य सफल हुए, किंतु कविता को सरल स्वाभाविक सजीवता देकर मीठी टीस उत्पन्न कर देने वाली वे कभी भी न बना सके।

घनानद की कविता मे बैठते हुए हृदय के करुण स्वर इसलिए है कि घनानद ने सच्चे हृदय से प्रेम किया था। विहारी, मतिराम, देव आदि से वे इसी बात में भिन्न और तुलसी, सूर तथा मीरा से इसी बात मे मिलते-जुलते थे। विहारी को प्रेम की वास्तविक अनुभूति शायद न थी। सभवत. प्रेम को उन्होंने पोथियो से जाना था। 'प्रेम की पीर' जिसे जायसी खूब पहिचानते थे, जिसने सूर के हृदय को मथित कर उसके रत्नो को 'सूरसागर' के रूप मे सॅवारा था, जिसने मीरा को जीवन भर रुलाया था, वह विहारी के लिए अनजान थी।

विहारी मिलन और सयोग के कवि है। स्त्रियो के सहज सचिक्कन-विथुरे-सुथरे बालो को देखकर उनका मन पथ-बेपथ नहीं देखता।[1] वे विकट तीर्थों की चिंता क्यो करेंगे, यदि उन्हे पैरो को परसने वाली वेणीवाली मृगनैनी देखने को मिल जाय।[2] वे नागर होने से काननचारी नयनो को महत्व देते है।[3] भाव की

---

[1]सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ, लखि, विथरे सुथरे बार॥

[2]ताहि देखि मन तीरथनि, विकटनि जाय बलाय।
जा मृगनैनी के सदा, वेनी परसत पाय॥

[3]खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।
कानन चारी नैन-मृग, नागर नयनि सिकार॥

रस्सी को अटारियों पर बाँध कर मन को नट की तरह उस पर दौड़ाते हैं।[१] गुलाब की पँखुड़ियों के समान कपोलों पर,[२] सुरसरिता में उछलती मछलियों के समान चंचल आँखों पर,[३] दुपहरिया के फूलों की सी, वर्षा कर जाते हुए अरुण चरणों पर[४] अनेक चित्रकारों की कला को कुंठित करते हुए रूप पर, बिहारी सदैव रीझे रहते हैं।[५]"

बिहारी की कविता पढ़ते ही हम ऐसे लोक में पहुँच जाते हैं जहाँ नायिकाएँ नट के बट्टे की तरह नागर के नेह में अटा पर चढ़ती-उतरती रहती हैं।[६] मस्त नायिकाएँ वाक्-कुवाक् बोलती रहती हैं।[७] लाल की गुड्डी अपने आँगन में उड़ती देख कर कोई नायिका बावली सी दौड़-दौड़ कर उसकी छाया को छूती फिरती है।[८] खेतों में फूली हुई अरहर पककर दाल के काम आती है और कच्चेपन में कुछ और काम।[९] वहाँ वारुणी सेवन कर वामाएँ ऐसी बातें करती हैं जिन्हें सुनकर पाठक सोचने लगता है क्या वह बे इजाजत किसी ऐसी जगह तो नहीं आ गया है जहाँ उसे नहीं आना चाहिए था। वहाँ से पाठक शराब पीकर होश में आने वाले की भाँति लौटता है।

---

[१]डीठि बरत बाँधी अटनि, चढ़ि धावत न डरात।
इत उत ते चित दुहिन के, नट लौं आवत जात॥

[२]बरन बास सुकुमारता, सब विधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय॥

[३]चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुर सरिता विमल जल उछरत जुग मीन॥

[४]पग-पग मग अगमनि परति, चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर-ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि॥

[५]लिखनि बैठी जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

[६]झटकति चढ़ति उतरति अटा, नेकु न थाकति देह।
भई रहति नट को बटा, अटकी नागर नेह॥

[७]सखी संग सकुचति न चित, बोलति बाक-कुबाक।
दिन छनदा छाकी रहति, छुटै न छिन छवि छाक॥

[८]उड़ी गुड़ी लखि लाल की, अँगना-अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह॥

[९][illegible] फूले [illegible] [illegible] [illegible] लहै उजारि।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अरहरि हिय हारि॥

प्रेमकाव्य के अन्य कवि और घनानंद

विहारी अपनी कल्पना के सौंदर्य में इतने खो गये है कि दूसरी ओर उ दृष्टि जाती ही नहीं। उन्हे हम जव देखते है कल्पित ही राज्य में विहार करते पाते है। विहारी-सतसई ऐसे काव्यो में कवि के दर्शन होते ही नही। शास्त्रीय कवि होने से विहारी ने मनुष्य-समाज की पर्यालोचना नहीं की। उनकी कृतियॉ विद्वानो की शोभा हो सकती है पर सर्वसाधारण की संपत्ति नही। वह विलास की सामग्री है पर पूजा की पात्र नहीं। उनसे मस्तिष्क मे उत्तेजना आ सकती है पर हृदय में शाति नहीं हो सकती। उसके भावो मे तल्लीन होकर रसिक आत्म-विस्मृत हो सकते है पर उनमे जाग्रति नहीं आ सकती।

इसमे सदेह नहीं कि जाग्रति घनानंद की कविताओ से भी नही आ सकती किंतु उससे वेदना जाग्रत होकर प्रेम की भावनाओ का परिष्कार अवश्य कर जाती है। घनानद, तुलसी की भाँति जनता के कवि तो नहीं है, किंतु अयोग्य पात्रो के मुखो से भी उनकी कविता उर्दू की गजलो की तरह नहीं सुनाई देती। भवभूति की भाँति वे उन्ही समानधर्माओ के कवि हैं जिन्होने प्रेम के ऊँचे आदर्श को समझा है और जिनकी हृदय की आँखो मे नेह की पीर लगी है। विहारी की भॉति कल्पना के लोक में खोये, घनानद कभी नजर नही आते और न व्यक्तित्व से वचित ही उनकी कविता है। विहारी की कविता काट-छॉट कर सँवारे हुए (फूलो का गुलदस्ता अथवा) सग-मरमरो की चित्रकला है तो घनानद की कविता, मीरा के काव्य की भॉति उस विरहिणी का घर है, जिसके आँसू शून्य मे सूख जाते हैं,और जो बीती हुई बेला और भुलाया हुआ प्यार होने से अपने उच्छ्वासो के आँसुओ की माला पोया करती है। भाषा की समाहार और समास शक्ति के कारण विहारी बड़े कवि है किंतु भाषा की सरल स्वाभाविक स्वच्छता और वेदना की करुण अभिव्यक्ति के लिए घनानद रीति-काल के कवियो मे अद्वितीय है।

मर्यादित प्रेमानुभूति की हीनता मे जो हाल विहारी का है वही मतिराम और देव का भी है। इनके लिए नायिका का शरीर ही सब कुछ है। शरीर ही तक उनका प्रेम सीमित है। इनकी विरह-व्यथा की अवधि भी शायद एक दो रातो से अधिक नहीं है। सखियो और गुरुजनो के सामने ही नायक, नायिका को 'प्रेम' करने लगते है। नायिका रिसा जाती है। वे मुसकरा कर चले जाते है। नायिका के दुःख का पारावार नही। वह सिसक कर रात काटती है, रो-रोकर सबेरा करती है। वडी-वड़ी आँखो से आँसू ढरते है, और गोरा-गोरा मुख ओले की तरह धीरे-धीरे 'विलाता' जाता है—

सखी के सकोच, गुरु-सोच मृगलोचनि
रिसानी पिय सों, जो उन नेकु हँसि छुयो गात।
'देव' वै सुभाय मुसकाय उठि गए, यहाँ
सिसकि सिसकि निसि खोई, रोय पायो प्रात।

को जानै री,, बीर बिनु बिरही बिरह-व्यथा,
हाय-हाय करि पछिताय, न कछू सुहात ॥
बड़े-बड़े नैनन सों, आँसू भरि-भरि ढरि
गोरो-गोरो मुख आज ओरो सो बिलानो जात ॥

—देव

कहीं विरह-व्यथा से नायिका इतनी पतली हो गई है कि दिखाई नहीं देती, केवल एक आँच सी बिस्तर पर दिखाई देती है, जिससे अनुमान हो सकता है कि शायद नायिका यही है—

देखि परे नहि दूबरी, सुनिए स्याम सुजान ।
जानि परे परजंक में, अंग आँच अनुमान ॥

—मतिराम

पूस की रात मे अपने कपड़े भिगोकर सखियाँ नेह-वश उस विरहिनी सखी के पास जा रही है, जो प्रलय-काल के सूर्य की तरह ज्वाला उगल रही है—

आड़े दै आले वसन, जाड़े हू की रात ।
साहस कै-कै नेह-बस, सखी सबै ढिग जात ॥

—विहारी

कहीं गुलाब का इत्र नायिका के शरीर पर लगने से पहले ही भाप बनकर उड़ जाता है, तो कही विरह-कृषा नायिका भीतर-बाहर जाती-आती स्वास के साथ (हिंडोला बन रही है और) छः सात हाथ पीछे और आगे चली जाती हैं, और जहाँ नायिका रहती है, वहाँ ज्योतिषी जी भूल-भुलैया में पड़ जाते है, क्योंकि—

पत्रा हू तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पूनो ही रहत, आनन ओप उजास ॥

और यदि हुई नायिका में कोमलता के साथ कांति, तो इन भले मानुस ओंत के अंधे कवियों को 'माखन के मुनि' 'हुताशन' में धँटे नजर आते हैं। लेकिन इस अस्वाभाविकता के लिए शायद किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं है, क्योंकि घनी कहते हैं—

को जानै री, बीर बिनु बिरही बिरह-व्यथा ।

ये कवि (विरह-व्यथा के वर्णन में) चमत्कार दिखाने के फेर में बेतरह पड़े थे, और चमत्कार दिखाने की इन्हें इसलिए सूझी कि इन्हें कभी भी सच्चा विरह नहीं हुआ था, और सच्चा विरह इन्हें इसलिए नहीं हुआ था कि इन्होंने सच्चा प्रेम नहीं किया था। घनानद इन कवियों से प्रधानतया इसी बात में भिन्न हैं। प्रेम की कसौटी विरह है, और घनानंद का विरह वर्णन उनके सच्चे प्रेम का साक्षी है।

भवभूति ने 'अद्वैत सुख दु.खयो' कह कर प्रेम की वंदना की है। तुलसी ने अपना आदर्श चातक को माना है और सूर ने हिरन को, जो सम्मुख वाण के लगने पर भी अगो को पीछे नही मोड़ता। घनानद का भी इन्ही की भॉति प्रेम का आदर्श ऊँचा है। उनके लिए प्रेम अपार महोदधि है, जिसमे स्वय राधा और कृष्ण एकरस होकर सदा निमग्न रहा करते है और जिसकी तरल तरगो की भूली-भटकी 'एक ही' बूंद सृष्टि को आनद-मग्न कर देने मे समर्थ है—

> प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै विचार
> बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयो है।
> ताही एक रस ह्वै बिवस अवगाहै दोऊ
> नेही हरि-राधा जिन्हे देखे सरसायो है।
> ताकी कोई तरल तरंग संग छूट्यो कन
> पूरि लोक लोकनि उमँगि उफनायो है।
> सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत
> ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायो है॥

तुलसी[1] की भॉति घनानद भी कहते है—

> एकै आस, एकै विस्वास, प्रान गहै बास
> और पहिचानि इन्हे रही काहू सों न है।
> मोहि तुम एक, तुम्हे मो सम अनेक आहिं,
> कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है?

घनानद का 'चाह के रग मे भीजा' हृदय बिछुड़े प्रीतम के मिलने पर भी शाति नही मानता[2] क्योंकि उसका प्रेम देह का नही है, वह देह के मिलने से आगे भी देखता है। घनानद प्रेम-मार्ग को अच्छी तरह जानते है। प्रेम का रास्ता बिलकुल

---

[1]एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
स्वाति बूंद घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥
—दोहावली

तुम्ह से तुमहि नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे
—गीतावली

[2]चाह के रंग में भीज्यों हियो बिछुरे मिले प्रीतम सांति न माने॥

सीधा है।[1] वहाँ कपट-चातुरी नही चाहिए।[2] सच्चा प्रेमी उस मार्ग पर अपनापन छोड़ कर चलता है।[3] जो निश्शंक नही है, जो कपटी है, वह वहाँ नहीं चल सकता।[4]—

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआँनँद प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक तै दूसरो आँक नहीं।[5]
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

लेकिन सब तो इस प्रकार अपना सर्वस्व अर्पण नहीं करते। घनानंद ने अपना सर्वस्व जिसे दिया था उसे तो निठुराई से निपट नेह है,[6] वह पहले स्नेह से अपनाता है और फिर सहसा ही स्नेह को तोड़ देता है। निराधार को पहले तो सहारा देता है और फिर बीच धार में बाँह छोड़ कर डुबो देता है। रस पिलाकर, जिलाकर, आशा को बढ़ाकर न जाने क्यों विश्वास में विष घोल देता है।[7] पहले मीठे-मीठे बोल बोलकर ठगता है, और फिर जी को जलाने लगता है।[8] रस-रग में अंग-अग को

---

[1] पिय को मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जानै बावरी, कहै अँगना टेढ़ा॥—कबीर

[2] सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति॥—तुलसी

[3] प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे, सीस देई लेइ जाय॥—कबीर

[4] बेष विसद बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइये, भएँ विषय-जल-मीन॥—तुलसी

[5] प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं।—कबीर

[6] जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह।

[7] पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिर नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिए जू॥
घनआँनँद आपने चातक कों गुन बाँधि लै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यों बिष घोरिए जू॥

[8] मीठे-मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलैं तौ तब,
अब जिय जारत धौ कौन न्याय है?

सींच कर उन्हीं में विषम विषाद की बेलि बोकर चला जाता है।[1] उसकी रीति बधिक से भी अधिक क्रूर है। वह कपट का चुगा देकर फिर मार नहीं देता, वरन् तड़फ-तड़फ कर मरने के लिए छोड़ देता है।[2] पर इतना सब होने पर भी घनानंद उस निष्ठुर से नेह करना नहीं छोड़ते, उनकी दृष्टि कहीं लगती ही नहीं।[3] जीवन से उदास होने पर भी उसे मिलन की आश बनी रहती है और इसी आश से वह प्रिय का नाम जप-जप कर अपने प्राणों को टिकाये रखता है—

जीव ते भई उदास, तऊ है मिलन आस,
जीवहु जिवाऊँ, नाम तेरो जपि-जपि रे !

अपने दुखों को भाग्य की करतूत मान कर[4] प्रिय को दोष नहीं देता वरन् उनकी मगल कामना करता हुआ कहता है—

इन बाँट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसे उराहनो दीजिये जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजियै जू॥
घनआँनँद जीवन प्रान सुजान तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहो तुम चाड़ु कहाय, असीस हमारियो लीजियै जू॥

उसे अपनी चिंता नहीं। यदि उसे जलाना ही उन्हें रुचा है तो प्रेमी प्रिय की सोगध खाकर कहता है—मै जीवन भर जलता रहूँगा किंतु मेरी दशा को देख कर किसी ने यदि तुम्हारे लिए बुरा-भला कह दिया तो मै क्या करूँगा! मेरे लिए तो वह बे-मौत का मरना हो जायगा—

मन भायो वियोग मे जारिबो ज्यो, तौ तिहारी सौ नीकें जरै औ मरै।
पै तुम्है मत कोऊ कहौ हितहीन, सु या दुख बीच अमीच मरै॥

प्रतिकूल हवा के इतने झोको को लगातार सहता हुआ जो प्रेम का पौधा इस प्रकार निश्चल रह सकता है, उसकी जड़ें कितनी गहरी होंगी ?

---

[1]सींचे रस रंग अंग अंगनि अनंग सौपि
अंतर मै विषम विषाद-बेलि बै चलै।

[2]अधिक बधिक तें सुजान रीति रावरी है,
कपट चुगौ दै, फिरि निपट करौ बरी।
गुननि पकरि लै निपाख करि छोरि देहु,
मरहि न जीयै महा विषम दया-छुरी॥

[3]दीठि को और कहूँ नहिं ठौर, फिरी दृग रावरे रूप की दो ही।

[4]भाग आपने ही ऐसे, दोष काहि धौ लगाइये॥

प्रेम की यह गहन अनुभूति थी जिसने घनानंद की कविता को वेदना की स्वाभाविक हरियाली देकर रीति-काल की अस्वाभाविकता की मरुभूमि में भटकते पाठक के लिए हरी-भरी भूमि के समान आनंदप्रद बना दिया है। प्रेम की बारीकियो को जितना घनानंद ने देखा है उतना और किसी ने नहीं। अन्य शृंगारी कवियो में शृंगार-वर्णन में आचार्यत्व का जितना ध्यान रहा है, उतना साहित्य का नहीं। मतिराम, ठाकुर, पद्माकर इत्यादि ने पहले साहित्यशास्त्र के लक्षण लिखे, बाद को उदाहरण के लिए कविता लिखी। फल-स्वरूप न तो वे साहित्य-शास्त्र के ही क्षेत्र में आगे बढ़ सके और न कविता के ही, किंतु (बिहारी और) घनानंद लक्षण-लिखने के फेर में न पड कर स्वतंत्र रूप से कविता करते रहे। कल्पना और अनुभूति को स्वच्छंद मार्ग देने के कारण ही घनानंद की कविता अधिक सुंदर और सरस हो सकी है।

प्रेमकाव्य का विवेचन

१

हिन्दी-साहित्य मे भावो का जो उत्कर्ष भक्ति-काल के काव्य मे हो चुका था उसने परवर्ती कवियो का ध्यान भाषा-सौदर्य की ओर भी खींचा। मुगल-दरबार की विलासीवृत्ति के अनुकरण की स्पर्द्धा से राज-दरबारो में जो कविता हो रही थी वह मुक्तक की छाया मे कवित्त, सवैये और दोहे जैसे छंदो मे अपने जीवन का रस भरने मे लगी हुई थी। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा आदि भक्त कवियो के साथ रहने से हिन्दी की सरस्वती के मुखमडल पर स्वर्गीय दीप्ति आ गई थी। कवियो की उसे गहनो से सजाने की साध अब बढती जा रही थी। भक्ति-काल के पश्चात् आने वाले कवि इस दिशा मे भी प्रयत्नवान हुए।

भक्ति-काल आस्था और आशा का युग था—उस आशा का जो त्याग कराने की भी क्षमता रखती है। जीवन की विषम परिस्थितियो के राक्षसो के अत्याचारों से जनता तग आ गई थी। उस समय जिस किसी ने उसे आशा दी, भक्ति रखने को कहा, उसकी बात श्रद्धा सहित सुनी गई, पर जब श्रद्धा और विश्वास को दृढ बनाये रखने और जीवन को शक्ति देने वाले देशोद्धारक व्यक्ति के रूप मे कोई सार्वभौम भगवान् आते न दिखाई दिये और दुःख बढता ही गया तो निराशा ने समाज को खोखला कर उदासीनता की ओर ढकेल दिया। और जनता का प्रतिनिधित्व करना छोड़ कर कवि राजाश्रयो में रह विलासी राजाओ की विकृत भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगे। भक्ति-काल मे आदर्श और मर्यादा के वधन मे रहने वाली भावनाएँ विच्छृङ्खल होकर अमर्यादित शृगार मे प्रकट होने लगीं। कविता का उद्देश्य जीवन को परिमार्जित करना न रह कर विलासीवृत्ति के राजाओ और रसिको को रिझाना मात्र हो गया[१] और वह गायक और नर्तक की कलाओ की भाँति एक पेशा बन गई। उद्देश्य के इस परिवर्तन से कविता का विषय आदर्श चरित्रो का गुण-गान करने के स्थान पर उनके जीवन के वासनामयी चित्र उतारना हो गया। कृष्ण और राधा अलौकिकत्व से वचित कर कामशास्त्र के पटु नायक-नायिका बना

---

[१] आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई।
न तु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥—दास
रसिक रीझि हैं जानि, तो ह्वै है कविताई सफल।
न तरु सदा सुखदानि, श्रीराधिका-हरि को सुजस॥—द्विजदेव

दिये गये ।[1] राम का नाम ही भुला दिया गया। और समाज के सामने एक ऐसे कृष्ण को रख दिया गया जो जीवन की प्रारंभिक आवश्यकताओं से धनी होने के कारण मुक्त था, जो सुंदर स्वरूपवान् था, जो काम-कला-कोविद् था, जिसे बहुत-सी नारियाँ प्यार करती थीं और जिसका जीवन रात-दिन कुञ्जों में, वनों में, चांदनी रात में, मॅहकती हुई वीथियों मे, अथवा दीपों के स्निग्ध आलोक से भरे हुए महलों में, मानवती सुंदरियों को मनाने-बुझाने मे व्यतीत होता था। उसका रंगमहल उस स्थान पर बना हुआ था, जहाँ रोटी के दो टुकड़ों के लिए भयंकर युद्ध करते हुए तथा विघ्न-बाधाओं को कुचलते हुए, विजयी जीवन के लोमहर्षण स्वर[2] नहीं सुनाई पड़ते थे। देश क्या वस्तु है, सामाजिक पतन क्यों होता है, भीरुता कैसे आती है, जीवन के प्रति हमारा कर्तव्य क्या है, इन बातों की ओर वहाँ कभी ध्यान ही नहीं जा सकता था, जहाँ आलीशान महलों में कली से ही बँध कर भौंरे गूँजा करते थे।[3]

---

[1]केशव, देव और मतिराम के 'राधा और कृष्ण' के कुछ चित्र 'केशव की काव्य-कला' और 'हिन्दी की प्राचीन और नवीन काव्य-धारा' में देखे जा सकते हैं। विद्यापति और बिहारी के इन चित्रों की कुछ झलक प्रस्तुत रचना में ही अन्यत्र मिल जावेगी।

[2]भीषण-संहार।

हे भीषण, तुम जल में थल मे महाकाश मे,
लगे हुए हो अविश्राम किस के विनाश में ?
अनाचार वह कौन, नाश जिसका करने को,
प्रलय साज से सजा रुद्र तुमने अपने आपको ?
बरस रही निर्मम ज्वालाएँ नभ से,
जिनके आघातों से जलते नगर-ग्राम तिनकों से।
मरते हैं निरीह नर-नारी पृथ्वी भर में !
हाहाकार उठ रहा है निर्दय अम्बर में।
कठिन-दासता से विमुक्त मनुजों के जीवन,
रोग शोक दारिद्र्यहीन सुंदरतम यौवन।
घृणा-द्वैष से हीन, प्रेम के भाव मनोहर,
पावेगी पृथ्वी क्या इतनी बलियाँ देकर ?

—चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

[3]नहि पराग नहि मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही तें बँध्यो, आगे कवन हवाल॥—बिहारी।

हृदय के सख्यातीत उद्गारो को अपने सखा गोविन्द के चरणो मे चढ़ा कर सूरदास इस पृथ्वी को छोड़ कर चले गए थे। तुलसीदास के पावन कंठ से आशामयी वाणी का निकलना अभी बद नहीं हुआ था। इसी समय राजा इन्द्रजीत के पुरोहित और मुसाहिब, वेश्या प्रवीणराय के गुरु, सस्कृत के प्रकाड पडित केशवदास ने साहित्य की धारा को, स्वाभाविक विकास द्वारा स्थापित हुए रस मार्ग से हटा कर दूसरी ही (अलकार-मार्गी दडी और रुय्यट की) ओर बहाने का उपक्रम अपनी चमत्कार-पांडित्य प्रियता के कारण किया और (सस्कृत) साहित्य के विकास की कई सीढियो को निगल कर केशव अलकार-मार्ग के समर्थन मे लग गये। किंतु रस का जो प्रवाह, विकास की स्वाभाविकता के कारण, प्रबल हो चला था, केशव के थामे न थमा और हिंदी में भी रस की परपरा चल पड़ी। रस को कविता की आत्मा, और अलकारो को उसके आभूषण मान कर, कविगण काव्य के विभिन्न अंगो की श्री वृद्धि करने मे लग गये। आंतरिक शृगार के साथ बाह्य वेषभूषा का आयोजन करने वाली प्रवृत्ति की प्रधानता का वह युग किसी उपयुक्त नाम के अभाव मे 'रीतिकाल' कहलाता है। 'अलकृतकाल', 'कलाकाल', 'शृंगारीकाल' आदि नाम भी इसे दिये गये है किंतु अन्य नामो की भॉति अनुपयुक्त होने पर भी 'रीतिकाल' नाम अब चल पड़ा है, इसलिए अब उसे इसी नाम से पुकारना सुविधाजनक है। चिंतामणि और केशवदास इस (रीति) काल के प्रथम आचार्य माने जाते है।

राधा और कृष्ण की रस-रूप शृगार मे प्रतिष्ठा, सस्कृत साहित्य में हो चुकी थी। भरत-नाट्यशास्त्र तथा वात्स्यायन-कामसूत्र के सयोग से नायक-नायिका-भेद का भी समावेश भक्ति-भावना मे हो गया था। जयदेव के गीत-गोविन्द की जो भाव-धारा विद्यापति से हिन्दी मे आई थी उसका पूर्ण विकास रीतिकाल के कवियो मे हुआ। राधा और कृष्ण की प्रेम-कथा मे कवियो को काव्य की ऐसी सामग्री मिल गई जिससे वे साहित्यशास्त्रियो, राजदरबार और जनता, तीनो को रिझा सकते थे। इसलिए राधा और कृष्ण को कवियो ने आसानी से अपनी कुत्सित भावनाओ का आधार बना लिया। केशव की कविता इस प्रवृत्ति का जीता-जागता नमूना है।[1] केशव को तुलसी और सूर की भाँति 'स्वान्त सुखाय' कविता करने का स्वप्न मे भी खयाल नहीं हो सकता था क्योकि उनकी 'बाँह छुडा कर' और उनके हृदय मे अपने सयोग-वियोग की पीडा भर कर कोई नही गया था। जिनको वे जी-जान से प्यार करते थे वे उनके पास ही मौजूद रहती थीं। केशव ने दीन-हीन देश मे घूम कर इस बात को नहीं देखा कि—

> खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
> बनिक को बनिक न चाकर को चाकरी।

---

[1] देखिये 'केशव की काव्य-कला'।

जीविका विहीन लोग, सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी ?"
(कवितावली)

कदाचित् उन्हें इसकी आवश्यकता न थी क्योंकि वे राजा इन्द्रजीत के गुरु थे। उन्हे तो 'इक्वीस ग्राम' राजा साहिव ने पाँव पखार कर दिये थे—

गुरु कर मान्यो इंद्रजीत, तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दिये इक्बीस तब, ताके पाँय पखारि॥

और राजा भी कौन ? वे प्रताप नहीं थे, वे शिवाजी नही थे, वे जहाँगीर के एक सेवक मात्र थे—सुरा और सुवर्ण के साथ सुंदरियों के वीच जीवन विताने वाले! उन्हें और उनकी सुदरियों को कविता का शौक था, जिसको पूरा करने का बीड़ा दरवारी कवियों ने उठाया। केशव का उनमे प्रमुख हाथ था।

सत, महात्माओ और त्यागियो के हाथ से हठ कर कविता जव व्यक्तिगत स्वार्थ की ही चिन्ता करने वाले आराम-पसद रसिको के हाथ में चली गई तव जनता से उसका सवंध छूट-सा गया। और परतत्रता की बेड़ियो मे जकडे जीवन की विलासिता के जर्जर ढाँचे मे पले राजदरबारो में उस (कविता) ने शरण ली। इसलिए कविता स्वाभाविक रूप से विकसित न हो सकी। प्रशंसा पाने की प्रवृत्ति ने समय के अभाव (अथवा कमी—क्योंकि दरबारो मे अनेक कवियो को कविता सुनाना होता था) मे कविता को मुक्तक-छंदो तक ही सीमित रख चमत्कार-प्रियता—चाहे वह अस्वाभाविकता को ही उत्पन्न करने वाली क्यों न हो—की ओर वढाया। और वास्तविक अनुभूति के अभाव मे वह प्राणहीन (रसहीन) कलावाजी भी हो गई। इस कलावाजी की ओर कवियों को तेजी से वढा देने में उनकी आचार्य बनने की अभिलाषा ने भी योग दिया। और यह समझा जाने लगा कि छंद, रीति, अलकार, रस आदि के पंडित हो जाने से ही कोई कवि भी हो जा सकता है। इन सव परिस्थितियों से ऐसी विषम स्थिति आई कि भाव-परिष्कार की अवहेलना और भाषा सौदर्य और सौकुमार्य का सत्कार साधारण वात हो गई। साहित्य में चटकीले-चटकीले फूल तो खिले, किंतु अमृत मे विप भी मिल गया। संयमहीन अभिव्यक्ति मे शृंगारी साहित्य, काम-शास्त्र का साहित्य वन गया। विहारी की भाँति व्यंजना से काम न लेकर अधिकाश रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के नग्न-चित्र उतारे हे जिससे उनके प्रति घृणा होने लगती है। ऐसे कवियों की कविताओ मे और चाहे जो कुछ मिल सके जीवन को स्वस्थ तथा मंगल पथ पर ले जाने वाली शक्ति नहीं मिल सकती।

स्वार्थ-प्रिय विलासी आश्रय की प्रवृत्ति तथा आचार्यत्व की आकांक्षा ने रीति-काल के कवियों को परिस्थितियो को देखने-पहचानने और उनसे ऊपर उठने का अवसर नहीं दिया। अधिकांश कवि 'इक्वीस गाँव' और कुछ चाँदी के टुकड़ों को ही

पाकर शक्तिहीन विलासी जीवन के गीत ही जीवन भर गाते रहे। वृद्धावस्था की झलक उनमे कभी-कभी वैराग्य की भावना भी उत्पन्न कर देती थी और कहने के लिए वे भक्ति-काव्य की रचनाएँ भी कर देते थे किंतु 'सुछंद' न रहने तथा जनता के सुख-दुःख से आँख मूँद विलास मे ही लीन रहने के कारण रीतिकाल का कोई भी कवि परिस्थितियो से ऊपर नही उठ सका। यद्यपि राष्ट्रीय भावनाओ की आग और गुण-ग्राहिता ने लाल, सूदन और भूषण को वीर रस की कविता करने को उत्तेजित किया किंतु साहित्य-शास्त्र की तत्कालीन प्रवृत्ति के बंधन और राजाश्रय से मुक्त वे भी न रह सके। शिवाजी और छत्रसाल के चरित्र से प्रभावित होते हुए भी भूषण ने इन वीरो के चरित्रो को स्वतंत्र रूप से प्रबंध-काव्य का रूप देने की अपेक्षा 'समुझि कविन को पथ' के अनुसार कविता करना ही श्रेयस्कर समझा। यदि भूषण ने 'लक्षणो' के फेर मे न पड कर शिवराज-चरित्र लिखा होता तो संभवत ऐसे प्रबंध-काव्य की रचना हो गई होती जिसमे साहित्य-शास्त्र के सब लक्षण स्वत ही चले आते और जो 'मानस' की भाँति सुंदर तथा उससे भी अधिक उत्साह देने वाला काव्य होता।

यदि रीतिकाल के किसी भी कवि ने मूक जनता की आशा-निराशाओ का प्रतिनिधित्व किया होता, और राष्ट्रीय चेतनाओ को स्वच्छंद वाणी दी होती तो उसकी कविता विश्व-साहित्य की अमर वस्तु हो गई होती। कितना महत्वपूर्ण था वह समय, अभिमानी प्रताप को वीर गति पाये थोडे ही दिन हुए थे, भारत की आँखो के सामने ही गुरु गोविन्द के वीर पुत्र दीवारो मे चुने जा रहे थे, अपनी गैरिक पताका फहराते हुए शिवाजी बीजापुर और गोलकुंडा को रौंद रहे थे। इस महत्त्वपूर्ण समय में शोक है हमने अपने कुरुक्षेत्र मे बजते पाचजन्य को नही सुना बल्कि उलटे अपने ईश्वर को ही ऐसे रूप में चित्रित किया जिसे देख कर घृणा होने लगती है।

किंतु भावना की अपवित्रता की दृष्टि से रीतिकाल के कवियो को साहित्य के क्षेत्र से बहिष्कृत नही किया जा सकता। उनकी कविता मे वासनामय प्रेम के अतिरंजित चित्र उस स्वाभाविक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आये है जो भक्तिकाल की मर्यादा तथा सामयिक परिस्थितियो की कठोरता से उत्पन्न हुई थी। इस काल के कवियो का प्रधान उद्देश्य रस की निष्पत्ति करना ही था। राजाश्रय मे काव्य इसलिए पल रहा था कि जनता की हीन अवस्था से कवियो को अपनी वृत्ति के लिए जनता का आश्रय मिलना कठिन हो गया था और राजाओ की तनिक प्रशसा कर देने से उन्हे दैनिक जीवन की कठिनाइयो से मुक्ति मिल जाती थी। इसलिए अपने आश्रयदाताओ की प्रशसा करने के लिए हम इन कवियो की कुत्सा नहीं कर सकते। कहा जा सकता है कि 'इन कवियो ने मर्यादा की रक्षा और जनता की चिंता नहीं की' किंतु सभी मनुष्य त्यागी संत महात्मा—तुलसी कबीर और सूर—नही हो सकते और न आदर्श और मर्यादावाद तक ही कविता का क्षेत्र सीमित होकर रह जाता है। आदर्श और मर्यादावाद की सृष्टि, समाज के हित की भावना से मनुष्य करता है, किंतु जब समाज मनुष्य को ही कुचल देने का उपक्रम करता है तब समाज के अत्याचार से पीडित

मानव, परिस्थितियों की वास्तविकता से अलग रह कर, अपनी कोमल तथा कुचली हुई आकांक्षाओं को सुरक्षित रखने का प्रयत्न साहित्य और कलाओं में करता है। कविता और कला का क्षेत्र समस्त जीवन है, इसलिए वे कोमल वृत्तियाँ जो जीवन मे दवी हुई रह जाती है, वे अतृप्त वासनाएँ जो जीवन को बेचैन किये रहती है, साहित्य और कलाओं की सपत्ति है। रीतिकाल का साहित्य अतृप्त वासनाओं, कुचली हुई भावनाओं का ही सरस उद्दाम प्रवाह है।

किंतु रीतिकाल के साहित्य का महत्व भाव की पवित्रता और तल्लीनता की दृष्टि से नही है, वरन् है भाषा-सौदर्य और सौकुमार्य की दृष्टि से। भक्ति-काल के कवियो की भाषा मे जो गुण थे, वे तो रीतिकाल के कवियो ने उत्तराधिकार के रूप मे पाये ही, पर अपनी ओर से भी उन्होंने भाषा को सुकुमार बनाने का प्रयत्न किया। काव्य से कर्कश शब्दो का सप्रयत्न बहिष्कार और प्रचलित तथा अप्रचलित कोमल शब्दो का प्रचुर प्रयोग रीतिकाल के कवियो ने अपने काव्य मे किया। भाषा को सपन्न करने मे विदेशी शब्दो को अपनाने मे भी कविगण हिचकते न थे। किंतु भाषा की शक्ति को—विदेशी शब्दो को अपनाने की अपेक्षा बोलचाल के शब्दो, मुहावरो, कहावतो तथा अनुभूति-जन्य नवीन व्यजनाओं द्वारा बढाने वाले इने-गिने ही कवि थे, जिनमें घनानद का स्थान प्रमुख है। यो तो बिहारी भी मॅजे कवि है किंतु भाषा की वह मसृणता, वह सजीवता, वह व्यावहारिक शुद्धता बिहारी मे भी नही है जो घनानद में उनकी सब से बड़ी विशेषता के रूप मे है। और यह विशेषता, विरही कवि की पवित्र भावनाओं से युक्त घनानद के काव्य को, रीतिकाल की अस्वाभाविकता की मरुभूमि मे हरी-भरी भूमि के समान आनद देने वाली बना देती है।

प्रेमकाव्य का विवेचन

२

प्रेम, साहित्य का अभिन्न अग है। किंतु उसमे ऐसा डूब जाना कि उससे विकृति उत्पन्न होने लगे एक बात है, और उसे प्रसन्न, आनद तथा शक्ति का स्रोत बना देना दूसरी बात। पहली रीति, साहित्य को कामशास्त्र मे जा ढकेलती है, तो दूसरी काम को भी अमृतदायिनी सजीवनी मे परिणत कर देती है। अश्लील से अश्लील समझी जाने वाली भावनाओ को भी व्यजना के सहारे कला की वस्तु और प्रखर से प्रखर उत्तेजक शृगार को भी सयम के द्वारा शक्ति संचार करने वाला बनाया जा सकता है।

मुक्तक-काव्य मे प्रेम, शक्ति से कही अधिक स्रोत आनद का होता है, किंतु प्रबध-काव्य मे वही अपने सानद की अक्षुण्यता के साथ ही साथ शक्ति की धारा को भी अपने मे ले घसीटता है।

वीर प्रेम-काव्य के साहित्यिक युग मे युद्ध के गीतो के साथ ही साथ प्रणय के काव्य की धारा हिन्दी साहित्य मे वहती रही है, उसके कवि जीवन के क्षेत्र मे भी उसी शक्ति के साथ उल्लासपूर्ण कार्य करते थे जिस तरह भावनाओ के क्षेत्र (काव्य) मे।

किंतु परिस्थितियो के बदल जाने के साथ ही साथ जीवन और साहित्य का भी एक प्रकार से सबध विच्छेद हो जाता है और जीवन की वास्तविकताओ को कमरार्थ की भाँति अपनाने के साथ ही साथ भावनाओ के क्षेत्र मे भी उल्लासी वीरत्व की धारा बहाने वाले कवियो की कमी हो गई। प्रेम, जीवन के सघर्ष से दूर पड कर एकातिक भावनाओ का देवता हो गया। भक्तो और उपासको ने उसकी व्यक्त और अव्यक्त रूप मे पूजा की, कवियो और रसिको ने उसको अपनी रसिकता से पूर्ण कर उसकी आराधना मूर्तिमान काम के रूप मे की।

किंतु उसका यह रूप सदैव स्थिर न रह सका। समय के करारे आघात इन प्रेम के एकातिक पुजारियो को भी वास्तविकता और जीवन के सघर्ष की ओर कदम बढाने को प्रेरित करने लगे। समय बदल गया था, राज्य बदल गया था, सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन की अनस्थिरता मे थी, प्राचीन और नवीन का सघर्ष, उदासी की नीद से जनता के जागरूक स्पदनो को मुक्त करने लगा था। फिर कैसे एकातिक भावनाओ के पुजारी समय के प्रभाव से अछूते रह सकते थे? प्रेम की वह धारा जो कई शताब्दियो तक यौवन के सकीर्ण घेरे मे ही बँध गई थी बाँध तोड कर समाज,

राष्ट्र और मानव तथा प्रकृति की धाराओ से आ मिली। जीवन के धरातल पर आगे बढ़ते बढते उसमे स्थिरता आ गई। वेग के साथ बधन-मुक्त होने से अपने साथ जो कुछ कूड़ा-कबाड वह ले आई थी वह स्थिर हो गया और स्वच्छ विस्तीर्ण फैलाव के साथ वह बहने लगी। पत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के प्रमुख कवि है। किंतु जनता के सामने न आये हुए कवियो मे श्री चन्द्रकुँवर वर्त्वाल शांत सात्विक प्रेम के अद्वितीय गभीर कवि है।

काव्य-प्रशस्ति पर टिप्पणी

प्रशस्ति मे छद-सख्या ५, ६, ७, ८ को देखने से पता चलता है कि घनानद के काव्य के विषय मे ये कथन किसी अन्य व्यक्ति ने किये है जो सभवत ब्रजनाथ था। छठे छद मे 'घन जी', शब्द आया है, सातवे मे 'घन जी' तो आया ही है किंतु 'बृजनाथ कहै' भी आया है। आठवे मे भी 'कहै बृजनाथ' विद्यमान है।

यद्यपि 'घन जी' और 'बृजनाथ' को कृष्ण के अर्थ मे लगाया जा सकता है जैसा कि हमने अन्यत्र किया भी है किंतु यह भी असभव नही कि अन्य व्यक्ति तथा अर्थ मे ये शब्द प्रयुक्त हुए हो।

बृजनाथ कौन थे, कहा नही जा सकता! किंतु असभव नही उनका सोमनाथ (शशिनाथ) से कोई सबध हो और शशिनाथ की रचनाओ मे दिये गये वश-वर्णन मे कवि ने जिन आनदनिधि को अनत यश वाले बड़े उजागर कहा है वह घनानद निकले—

'सिद्धता मै विमल वसिष्ठ मुनिवर से,
और जोतिस मे नीलकंठ मिश्र दिनकर से,
तिनके पुत्र अनंदनिधि बडे उजागर जानि,
तिन कौ जस सुदिगंत लौ महा उजागर आनि
गंगाधर तिनके अनुज, गंगाधर परवांन,
सौमनाथ तिन कौ अनुज सबतैं निपट अजान।'

यदि ऐसी बात हुई तो घनानद की जीवनी मुक्त हो जावेगी और उसके विषय प्रचलित अनुश्रुतियाँ बहुत कुछ हद तक सत्य निकल आवेगी और सूरजमल के यहाँ देव और घनानंद की भेट भी घट सकेगी। किंतु जीवनी खड मे दिखलाया गया है कि घनानद का समय (1573 AD—1660 ई०) सोलहवीं-सतरहवीं शताब्दी होना चाहिए। सूरदास के समय के आस पास होने वाले कई कवियो की गिनती किसी कवि ने दोहो में की थी, ये दोहे 'सरस्वती' भाग ३० सख्या ६, पृष्ठ ६६२—६३ पर छपे है इनमे घनानद की भी गिनती हुई है।

ओलिराम, अकबर, अगरदास, कवि करनेस,
चतुर बिहारी गोप कवि घनआँनँद अमरेस—(दोहा २)

ये दोहे प्रामाणिक तो नहीं कहे जा सकते, किंतु इस बात की सूचना अवश्य देते है कि इन कवियो के बारे में कुछ न कुछ लिखने वाले को अवश्य ज्ञात था।

सोमनाथ हमे जिस 'अनदनिधि' के बारे में वतलाते है वह आनंदघन अथवा घनानंद ही है अथवा नही, यह अभी दृढ़ता के साथ कह सकना सम्भव नहीं है किंतु इस नाम से भी कवि के नाम जानने मे हमें सहायता मिल सकती है।

हमें घनानद के अध्ययन तथा अन्य खोज से यह पता सा होता चला जा रहा है कि कवि का वास्तविक मूल नाम आनंद ही था। घनानद के कवित्त सवैये इस आनद छाप से नवीन कृत 'प्रबोध-रस सुधासागर' तथा 'सुजानसागर' मे मिलते ही है। इधर सोमनाथ का उल्लेख भी यदि वह घनानद के ही विषय मे है, आनद नाम का सकेत दे रहा है।

अब आसानी से समझा जा सकता है कि आनद अथवा आनदनिधि कैसे आनंदघन अथवा घनआँनँद बन जाते है। आनद ने राधा और कृष्ण दोनो को अपना उपास्य बनाया है यह उनके कवित्त और सवैयो से साफ पता चलता है और सुजान शब्द दोनो का विशेषण बनाया है। राधा की ओर सकेत करने के लिए 'आनद की निधि' शब्द प्रयोग मे लाया गया है।

> आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल
>
> अगनि अनंग रंग ढुरि मुरजानि मे।

और कृष्ण की ओर सकेत करने के लिए 'आनद के' अथवा 'आनद को घन'—

> बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे
>
> कृपानिधि आनंद को घन बरसाय हौ,

इसलिए दोनों की भावना को एक साथ प्रकट करने के लिए (रस—आनद स्वरूपा राधा का बोधक 'आनद' और कल्याणकारी वृष्टि करनेवाले कृष्ण अथवा घनश्याम का बोधक 'घन' शब्द लेकर) अपना नाम 'आनदघन' अथवा 'घन-आँनँद रख लिया। इस नाम मे कवि का मूल नाम तो आ ही गया साथ ही उसकी राधा और कृष्ण की भक्ति का भी सकेत हो गया।

आनदघन की छाप से पाये जाने वाले पदो को घनानद की रचनाओं स खारिज नहीं किया जा सकता है। पदो को देखकर यह धारणा हो सकती है कि उसमें राधा की प्रधानता है कृष्ण की नहीं। किंतु यह आरभिक धारणा होगी। ध्यान से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि गेय पदो मे भी कृष्ण गौण नही है। इसी भाँति सुजान-सागर मे कृष्ण ही प्रधान हो ऐसी बात नहीं। राधा को भी उतना ही महत्व कवि ने दिया है जितना कृष्ण को।

यह कहकर कि जिन टीस वेदनामय घनआनँद की छाप वाले कवित्त-सवैयों मे सुजान कृष्ण की प्रधानता है वे ही घनानंद के है और अन्य राधा की भक्ति की भावना की प्रधानता तथा आनदघन की छापवाले छद किसी अन्य राधाभक्त आनद-घन के कवित्त और सवैयों को छाँट कर दो कवियों के बाँट डाल देना न युक्ति सगत

ही है न उचित और आसान ही। घनानद ने भी राधा को महत्व दिया है और उनकी सुजान राधा ही है न कि कोई अन्य वेश्या प्रेमिका, और उनकी कुररी क्रदन अथवा टीसवाली कविताएँ राधा को ध्यान मे रखकर लिखी है, इन बातो को सिद्ध करने के लिए अनेक छद सुजानसागर मे विद्यमान है। यहाँ उत्सुकता की शाति के लिए कुछ छद उद्धृत किये जा रहे है।

> राधे सुजान इतै चित दै हित मैं कित कीजत मान मरोर है।
> माखन ते मन कोंवरो है, यह बानि न जानति कैसे कठोर है।
> सॉवरे सों मिलि सोहती जैसी कहा हिये कहिबे को न जोर है।
> तेरो पपीहा जु है घनऑनंद है, ब्रजचद पै तेरो चकोर है॥

राधा अकेली नहीं स्याम के साथ सोहती है। युगल-छवि के उपासक घनानद है। प्रेम के पथ पर अपने मन को घनानद युगल-छवि क दर्शनो के लिए ही ले जाते है—

> प्रेम सो रतन, जाते पाइ है सहज ही मे
> चहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
> राधिका चरन नख चंद त्यों चकोर कै, सु
> बाढतु अमंद यों तरंगनि उमाहि तू।
> बोहित बिसासहू चढाइ लै है सोई हा हा
> कृष्ण कृपासिंधु मेरे मन अवगाहि तू॥

और कृपा का अवलवन भी राधिका-माधव ही के प्रेम के लिए करते है—

> मेरे कृपा घनआनँद है, रस भीजै सदा जिहि राधिका माधौ।

इस युगल-छवि की उपासना के कारण, कवि ने अपना नाम आनद से विकसित कर आनदघन और घनआँनद दोनो रूपों मे रक्खा है।

चयनिका

काव्य-प्रशस्ति

१

तीछन ईछन बान बषान सौ पैनी दसाहि लौं सॉन चढ़ावत।
प्राननि प्यास भरे अति पानिप भाइल घाइल चौंप चढ़ावत।
यौं घनआँनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग है लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत ॥

२

मैं अति कष्ट सौ लीने कवित्त ये लाज बडाई सुभाव कौं पोइ कैं।
सो दुष मेरौ न जॉने कोऊ लैं बषानैंलि षाइयै मोहू कौ गोइ कैं।
कैसी करौ अब जाऊँ कितै मैं बिताए है रैनि दिना सुष षोइ कै।
प्रेम की चोट लगी जिन आँषिन सोई लहैं कहा पंडित होइ कैं।

३

कोट बिषै कर ओट महा नहिं नेह की चोटहिं जो पहिंचाँनैं।
बात के गूढ़न भेदन मूढन कोऊ कहै हठिवादहि ठाँनैं।
चाह प्रबाह अथाह परे नहीं आर ही आप विचछन मॉनैं।
पूँछ बिषान बिना पसु जे, सु कहा घनआँनँद बानी बषाँनैं ॥

४

स्वाद कहा पर वापन चापत ज्यौं जन नैननि रोस बढ़ावै।
ज्यौ तरुनी तम रूप निहारत पंड बढ़ै जिय सोच घढ़ावै।
चित्र विचित्र के भेद सराहत ज्यौं द्दग मंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआँनँद बानी बषानत मूढ़, सुजाननि आनि सतावै ॥

५*

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कैं सब के मन लालच दौरे पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्यां प्रवीननि की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआँनंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥

६*

नेही महा व्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जाँनै।
जोग वियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप कौं ठाँनैं।
चाह के रंग मैं भींज्यो हियो बिछुरै मिले प्रीतम सांति न मांनै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखांनैं॥

७*

नेह मकरंद भरे कैधौं अरविंद वृंद निरपत
नसत सकल ताप ही के हैं।
कैधौं सुवरन के कलस ये सुधा सौं भरे स्वाद
पायें लगत सवाद सब फीके है।
कैधौं अद्‌भुत जलधर वृजनाथ कहैं
नवरस रग वरसत अति नीके है।
चोर चित्त कें वित्त के पैठि बर जोर हियैं
कैधौं विलसत ये कवित्त घन जी के हैं।

८*

प्रगटे सुधन सुवरन स्वांति जल जेतौ
बसे छंद बंद रीति मुकुति उदार है।
सुंदर विमल बहु अरथ निधांन
देपौ अचिरज नेह भरे झलकैं अपार है।
कहैं वृजनाथ बहु जतनन आए हाथ
बरनौ कहा लौं एतौ परम सुढार हैं।
एजू सुनौ मित्त चित्त गुन ही पोई
इन्हें रापौ कंठ मुकता कवित्त करि हार हैं॥

---

*देखिये 'काव्य-प्रशस्ति' पर टिप्पणी।

कृपा-कंद

१

नैकु उर आएँ ही बहुरि दुख दूरि जात
ताप बिनु ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि है लागनि दै पाग अनुरागनि दै
जागनि जगाइ लै कै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद ह्वै
मूढ़हू प्रगट गूढ़ छंदनि कृपा करै।
आरति निकंदन मिलावै नँदनँदन
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करै।

२

काहे को सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यों सुप जी है।
ऐसे रसामृत पुंजहि पाय कै को सठ साधन छीलर छी है।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख ताप तें बौरे बचाय ही लो है।

३

जाके उर बसी है रसमसी छबि साँवरे की
ताहि और बात नीकी कैसें करि लागि है।
चषनि चषक पूरि पियो जिन रूप रस
कैसे सो गरल सनी सीखनि सों पागि है।
आनंद को घन स्याम सुंदर सजल अग
छाड़ि धूम धुँधरि सों कैसे कोऊ रागि है।
ये तो नैन वाही को बदन हेरै सीरे होत
और बात आली सब लागति ज्यों आगि है।

४

चातक चित्त कृपा घनआनँद चोंच की खोंच सु क्यों करि धारौ।
त्यों रतनाकर दान समै, बुधि जीरन चीर कहा लौं पसारौं॥

पै गुन ताके अनेक लखौं निहचै उर आनि कै एक बिचारौं ।
कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै यों कृपा बल पाय कृपाहि सहारौ ॥

५

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू ।
प्रेम सो रतन जाते पाइहै सहज ही मे
वहै नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू ॥
राधिका चरन नख चंद त्यों चकोर कै सु
बाढ़तु अमंद यों तरंगनि उमाहि तू ।
बोहित बिसास हू चढ़ाइ लैहै सोई हा हा
कृष्ण कृपासिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥

६

मादिक रूप रसीले सुजान कों पान किए छिनकौ न छकै कौ ।
भूल कों सौंपि तबै जु सबै सुधि काहू की कानि कनौड़त कै कौ ।
प्राननि वारि निवारि कौ लाजहि ऐसी बनै बिन काज सकै कौ ।
बावरे लोगन सों घनआँनंद रीझनि भीजि कै खीजि बकै कौ ॥

७

ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है आगनि धोइबो ।
त्यौ मन कों तिनके दरसें बिनु बाद बिचारनि बीच घँघोइबो ।
वे घनआँनँद क्यों लहियै श्रम कै भर भार अपारहि ढोइबो ।
जागत भाग कृपा रस पागत दीसत यों सहजै सुख सोइबो ॥

८

मरम भिदै न जौ लौ मरम न पावैं तौ लौ
मरमहि भेदै कैसे सुरनि वघोइबौ ।
राग ही ते राग के सुरूप सौ चिन्हारि होति
नैन हीन काँननि असूझ टकटोइबौ ।
अकथ कथा है क्योंऽब गाहियै अथा है तौन
ब्योरिबौ वृथा है बाद औसरहि पोइबौ ।
प्रेम आगि जागैं लागै झर घनआँनँद कौ
रोइबौ न आवै, तो पै गाइबौ हू रोइबौ ॥

९

गोपिनि की ससक कसक जो न आई मन
　　रसिक कहायेँ कहा रस कछू औरई।
समझि समझि बातैं छोलिबो न काम—
　　आवै, छावै घनआनँद जौ लौं नेह बोरई॥
कीन्ह ब्रजमोहन सौं जो पन परनि परी
　　ताहि अवगाहत हीं थकै मति दौरई।
मिलि बिछुरे कौ दुप बिछुरि मिले को सुख
　　तिन ही मैं व्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई॥

१०

मंजु गुंज करै राग रचै सुर भरै प्रेम-पुंज
　　छबि धरै हरै दरप मनोज कौ।
चाव मतवारो भाव भौंवरीन लेतु रहै
　　देत नैन चैन ऐन चोपनि के चोज कौ॥
और फूल भूलि रीझि भीजि घनआनँद
　　यौं बंदी भयो एक वाही गुनगन ओज कौ।
बानी रसरानी वा मधुव्रत कौं लह्यौ जिन
　　कृपा मकरंद स्याम हृदय सरोज कौ॥

विनय तथा उपालंभ

१

जा हित मात को नाम जसोदा सु बंस को चंद कला कुलधारी।
सोभा समूह भई घनआनँद मूरति रंग अनंग जिवारी॥
जान महा सहजै रिझवार उदार बिलास मैं रास बिहारी।
मेरो मनोरथ हू वहि ए[1], अरु है[2] मो मनोरथ पूरनकारी॥

२

नाम कौ न नेम बाँध्यौ प्रेम सौं सुलेषौ कहा,
　　धायौ नहीं धाम लीला माधुरी बिभूति कौ।

---

[1] बहिए, पुरवौ; [2] तुम ही

जनम जनम तैं अपावन असाधु महा
अपर सपूति सौं न छोंड़ै अजौं छूति कौ ॥
भूलि मोद मेहै, राच्यौ भ्रम धूम धुँधरि सौ
केवल कलंकी रूपी जननी प्रसूति कौ।
करुना निधान कांन्ह आपनै गुनैं सम्हारौ
मेरी गति कौन जो विचारौ करतूति कौ ॥

३

ऐसी कृपा कीजिये कृपानिधि निवारि भ्रम
भरिवौ करौ सदाई ब्रज बन भाँवरी।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि
चकि जकि चाहि रहै वहै छवि साँवरी।
आनंद के घन हौ पपीहा प्रान पोषियै जू
हित छाँह छुई मैटो सोच घाम ताँवरी।
छोरि सब ओर तै सुदेस लै बसैये, हा हा—
मनमोहन रसीले यौ गसैयै मोह दाँवरी ॥

४

अब सो करिये ब्रजमोहन जू जु करौ विनती कर जोरि यही।
सब ठौर तैं दौर थकै मन की कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही।
घनआँनँद दीन पपीहनि कैं तुम ही घन जीवन मूल सही।
जिय की गति जानति हौ सुष दैन कहौ जू कहा कहिवे की रही ॥

५

मोहन मूरति की पहिचाँनि सु आँपिनि बीच निकेत ही राषौ।
बंसी बजावनि रीझि रिझावनि प्रॉननि तॉननि पेत ही राषौ।
एहो सुजॉन तुम्है घनआँनँद चातक ज्यौ अब हेत ही राषौ।
जाचै तुम्है अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसे सचेत ही राषौ ॥

६

दृग दीजिये दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मनु दै फिरि लीजिये आपन हीं जु तहीं अटकै न कहूँ मटकै।
करि बंदन दीन भनै सुनियै भ्रम फंदनि मे कब लौं लटकै।
घनआँनँद स्याम सुजान हरौ जिय चातक के हिय की खटकै ॥

७

मन मेरो घनेरौ अनेरौ भयो अब कौन के आगैं पुकार करौं ।
सुषकंद अहो ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही सौं लरौं ।
अनमोह भए जन मोहत हौ मन मोहन या विधि याहि भरौं ।
घनआँनँद ह्वै दुष ताप तचावत क्यौं करि नाँवहि नाँव धरौं ॥

८

आननि प्रान हौ प्यारे सुजान हौ बोलो इतै हू पै घोर कहौ क्यों ।
चेटक चाव दुरौ उघरौ पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यों ।
मोहन रूप सरूप पयोद सों सींचहु जो दुख दाह दहौ क्यों ।
नाँव धरे जग मैं घनआँनँद नाव सम्हारो तो नाँव सहौ क्यों ॥

९

नित हौ चित हौ हित हौ इत हौ कित हो इतनैं पै उदेग दहैं ।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआँनँद कासौं बिथाहि कहैं ।
बसि एकहि बास बिसास करौ बसु नाँहि बिसारी बनीं सु सहैं ।
हम संग किधौं तुम न्यारें रहौ तुम संग बसौं हम न्यारी रहैं ॥

१०

आप ही मो तन हेरि हँसे तिरछे कर नैनन नेह के चाव मैं ।
हाय अबै जु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहै कित जाव मैं ।
मीत सुजान अनीति कहा यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव मै ।
मोहनी मूरति देखन को तरसावत हौ बसि एकहि गाँव मैं ॥

११

भले हौ रसीले अरसीले सुनि हूजिये न
गुननि तिहारे उरझ्यौ है मन गाइ गाइ ।
काननि सुनि है तैसे आँषिनिहू देखैं जातै
दीसत नहीं औ सब ठाँव रहे छाइ छाइ ॥
ऐसे घनआँनँद अचंभे सौं भरे हौ भारी
षोये से रहत जित तित तुम्है पाइ पाइ ।
एक बास बसे सदा बालम बिसासी पै
न भई क्यौं चिन्हारि कहूँ हमै तुम्है हाइ हाइ ॥

१२

करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
आँनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की।
रूप चतुराई सुभसील औ सुराई ऐसो,
भई है न, ह्वै है, कहिये धौ को समान की॥
अति ही उदारता की सींवों, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुन गान की।
काहू सों न कछू कहों अँपनी ही सों रहो
मोहि आस तैयेनी बृषभाँन की॥

१३

राधे सुजान इतै' चित दै हित मैं कित कीजत मान मरोर है।
माखन तें मन कोंवरो न्हैं यह बानि न जानति कैसे कठोर है।
सांवरे सों मिलि सोहती जैसी कहा कहिए कहिबे कों न जोर है।
तेरो पपीहा जु है घनआँनँद है, ब्रजचंद पै तेरो चकोर है॥

१४

अगम अगाध अद्भुत औरे और अति मति
गति थकित न होत क्यौ हू आव रे।
सिव बिधि सुक्र सनकादिक सहस मुख
बदत बदत वेदौ भेद बावरे॥
आनंद के अंबुद रसाल महा रोचक है
सब ही के हिये में बढ़ाइ देत चाव रे।
सुनत गुनत अभिलाषत उरभि बानी
गावत गनत न बनत गुन रावरे॥

१५

सुनि सुनि रावरे गुननि बावरे हैं कान लोचन
उतावरे ह्वै लोचैं हाइ कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागे जीवत हैं
वारनैं तिहारे कहा रंक हौं प्यारे जैसे हौ॥
दीजिये त्रिपाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ
परी घर घेर तुम निधरक ऐसे हौ।

छाए घनआँनँद रसीले रहौ दिन रैनि
दरसौ न दैया दैपे उघरि अनैसे हौ ॥

१६

घनआँनँद रस ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
भरत पपीहा नैन, दरसौ पै बरसौ नहीं ॥

कामना

१

रस मूरति स्याम सुजान लखें जिय जो गति होति सु कासों कहौं।
चित चुंबक लोह लों चायनि च्वै चुहँटै उहटैं नहिं जेतौ गहौं।
विन काज या लाज समाज के साजनि क्यों घनआँनँद देह दहौं।
उर आवति यों छवि छाँह ज्यों हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं ॥

२

मुख हेरि न हेरत रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथन हौं।
जिहिं वानक आयो अचानक ही घनआँनँद बात सु कासों कहौं।
अब तौ सपने निधि लों न लहौं अपने चित चेटक आँच दहौं।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यों हौ ब्रज छैल की गैल सदाई रहौ ॥

३

रस-सागर नागर स्याम लखें अभिलाषन धार मझार बहौ।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज सिवार गहौ।
घनआँनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़त कासों कहौं।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यों हौ ब्रज छैल की गैल सदाई गहौ ॥

४

सजनी रजनी दिन देखें बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं।
अँसुवों हिय पै चिय धार परै उठि स्वास झरै सुठि आस गहौं।
घनआँनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यों हौं ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं ॥

५

मन पारद कूप लौ रूप चहे उमहै सु रहै नहिं जेतो गहौ।
गुन गाड़नि जान परै अकुलाइ मनोज के ओजनि सूल सहौं।
घनआँनँद चेटक धूप मे प्रान घुटैं न छुटैं गति कासों कहौ।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यों हौ ब्रज छैल की गैल सदाई गहौं॥

ब्रज-भूमि[1]

१

सरस सुगध भाँति-भाँति भाव फूल बिछे,
सम रस रीति जा मैं केसरि के झोलना।
बिसद सुबासना बसन सौं सुधारि सज्यो,
चौकसि गुननि गस्यौ गूढ़ गाँस खोलना॥
राधा-मोहन बिलास को सुखासन है
दोऊ एक बानक सलोने मिठ बोलना।
तनक हू क्यों न बसौ बसन तनक, मेरो–
मन ब्रजमंडल को उड़न खटोलना॥

२

ऊधौ बिधि ई रित भई है भाग की रति
लही रति जसोदा सुत पाइन परस की।
गुलम लता ह्वै सीस धर्यौ चाहैं धूरि जाकी,
कहिए कहा निकाई भई महिमा सरस की॥
झूम्योई रहतु सदा आनँद को घन जहाँ
चातकी भई है मति माधुरी बरस की।

---

[1]बृंदावन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय।
कृष्ण ललित लीला करन, धारि रह्यो जड़ ताय॥
ब्रज समुद्र मथुरा कमल, बृंदावन मकरंद।
ब्रज-बनिता सब पुष्प है, मधुकर गोकुलचंद॥

आँखिन लगी है प्रीति पूरन पगी है अति
आरती जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥

३

गुरनि बतायौ राधा मोहन हू गायौ, सदा
सुपद सुहायो वृंदावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अभूत महिमंडन परे ते परे
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे।
आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही
सरस सुदेस सों पपीहा पन बहि रे।
यमुना के तीर केलि कोलाहल भरि ऐसे
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे।

४

गोपिन के रस कौ चसको जब लौ न लग्यौ तब लौ मन गुंजन।
नीरस की रसिकाइ कहा सब ही बिधि है सठ रे भव भुंजन।
प्रेम-पगीनि की प्यास भरयौ घनआँनँद छायौ जहाँ हित पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुपमै न बसै जमुना तट की किन पुंजन॥

५

हरि राधा जहीं जहीं राजत हैं वह ठौर जथा रुचि रंजन है।
सु संजोग वियोग महारस रासि तिही तित ही मन मंजन दै।
न मिलै बिछुरैं कबहू न कहूँ घनआँनँद यौ भ्रम भंजन जै।
लपि लै सुख संपति दंपति मै ब्रज की रज आँखिन अंजन कै॥

६

ब्रज की छबि हेरि हर्‌यौ हिय होतु पिली मिलि जूथनि जूथ जुँही।
घनघोरि घुरे चहुँ ओर नितै बरसै परसै सरसै सु फुँही।
तिहि कुंजन मै रस पुंज भरे बिहरे हरि राधिका चौप उँही।
घन आँनँद नैन पपीहनि कौ नित ही रस रासि रहौ समुँही॥

---

[1] वृंदावन के वृक्ष को, मर्म न जानै कोय।
डार पात फल फूल में, राधे-राधे होय॥

७

जहाँ राधा-मोहन की केलि कौ कुलाहल ही मांच्योई
    रहतु बन बेलिनि सरस है।
सुंदर सरोवर निघाट पनघट भैंट नैंन सैन
    न दैन चैन चाह तौ परस है॥
बांनक सुठौन सहज हीं देषै बनि आवै
    आनँद कौ अंबुद मनोरथ वरस है।
डीठि चातकी ह्वै जो दलगै तौ सोह
    ऑषिनि की ऑषिनि कौ फल ब्रजभूमि को दरस है॥

८

छायौ सरस सुदेस विबिध सुष कौ विस्तारतु।
निरष अमित उछाह ताप तन मन को टारतु॥
सब रिति साज समाज सदा जमुना तट लहियै।
सुंदर स्याम कहा याकी छबि कहियै॥
अवनी मणि अनुपम अमल, राजतु है सुषमा-सदन।
दंपति चातक जुगल हित, वृंदावन ऑनँदघन॥

९

वृंदावन सोभा नई नई रस भई गोभा,
    कहत बनैं न स्याम नैन पहिचाँनँहीं।
राधिका दरस कौ सुदेस आद रस
    याहि चाह्यौ इक रत जब जब जैसैं जांनँहीं।
ऐसे रंग मूरति बसे है एक संग दोऊ
    रूप की मरीचैं घनऑनँद वितॉनँहीं।
जमुना के तीर देषौ प्रगट दुर्यौ है,
    अति निगम अगम ताहि लेषैई बषॉनँहीं॥

१०

ब्रज वृंदावन गिरि गोधन जमुना तीर
    सुबस सुदेस पुरवन सुष साध कौ।
जा की भूमि भागहि सिहत गिरीस ईस,
    धूरि रस मूरि हरै दुष सब बाध कौ।

एक रस बिहरत दोऊ महा रस भीजे
आनँद पयोद प्रीति परम अराधा कौ।
स्याम के सरूप कौं कछुक निरधार होइ
तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा कौ॥

११

स्यांम यां में बसै यह बसै स्याम हियैं
सदा तामैं फिरि राधा बसैं क्योंऽब सौ निहारियै।
यही वृंदावन देषौ प्रगट दुरयौ है एक
मोहन की डीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै॥
नैंन चैंन मनसां रसोई राष्यौ बड भागीं
तिनहीं की कृपा कौ सु अंजन बिचारियै।
महा अचरज धांम मोहि औसे दीसि परयौ
दीसतु न काहू बिन दीसै लाल प्यारियै॥

१२

याहि दीसै, स्यांम दीसै, दीसैं स्याम, दीसै यह,
औसौ वृंदावन कहौ कैसै करि दीसई।
नीसतु दुरयौ सौ स्यांम सुंदर सुभाव लियै
हरयौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई।
परैं तैं परैं है भयौ हाय यहै वृंदावन
राचैं रज जाचैं ईसहु सेवक सीसई।
ताहि दौरै जात पाइ लियौ है सवनि
सूधौ मधुर त्रिभंगी जौ लौ कृपा न परीसई॥

१३

वृंदावन माधुरी अचंभे सौ भरी है
देषै स्याम अनूप रूप त्यौ ही याहि देषियै।
अंग रंग संग एकयेक ह्वै रह्यौ सदाई
तातै भोगवती राधा रानीं अवरेषियै॥
सुबन बन्यौं है सुष सन्यौ है कलिंदी कूल
आनंद कौ घन रस-मूरति बिसेषियै।

देषत दुरयौ अवनी पै अति ऊँचौ आहिगुन
सरस कृपा ही तै परस गुन पेषियै ॥

१४

वृंदावन पाइबे की गैल कौ गहै न जौ लौं
पाइ हू गए तै रस पारस क्यौं पाइयै ।
राधा पिय केलि की कलोंनि कौं सकेलि
नीकें सुभर भरयौ लैं तौ लौ उर न बसाइयै ॥
रहनि कहनि एक टेक टकटकी सौं
भानुजा-चरन ओंषिनि अँजाइयै ।
निगम बिसूर थाकैं पद ई परम दूरि
आनंद के अंबुद कौ थकि थकि धाइयै ॥

१५

राधा हरि आरति मरोरि मींडि मारति है
या विधि जीवइ जिय दिसा करै औरई ।
बन उपबन ब्रज बापरि परिक पोरि
गिरि गहवर उफनाति प्रेम रौरई ।
कहा जांनौं कैसी है कहा है दुहुनि की—
लाग, रंचक विचारैं अति बाढ़त है बोरई ।
रमन रँगीली भूमि ऑनँद कौ घन
झूमि रमंडि रमंडि दरसतु ठौर ठौर ई ॥

१६

ब्रज मोहन राधिका की रहवांनि सदा अनुराग सुहाग भरयौ ।
कहि आवतु क्यौं निरपैई बनैं गिरि गोधन मैं जु कछू लै धरयौ ॥
भरि भोवन नैंन हियै दिन रैनि सहेटनि भेटन टारि टरयौ ।
सु कलिंदी कै कूल आनंदनि मूल सनेह कौ देस है दीस परयौ ॥

यमुना

१

बिभाकर कुँवरि तमालनि की पाँति बीच
बीचनि मरीचैं जागि लागति जगमगी ।

भाँवना भरनि हिय गहर भँवर परे एक—
रस राग धुनि रंगनि रँग, मगी ॥
चातकी भई है चाहि आनंद के अंबुद कौं
बन घन ढूँढै री झडोननि डगमगी ।
प्रेम की पसीजनि प्रवाह रूप देषियत
सदा स्याँम के सिंगार सार सौं सगमगी ॥

२

तीर हीं जा कै महाछबि भरि सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँवरी ।
बासिनि के दृग तारनि पुंज की मूरति मंजु लसै तिहि ठाँवरी ।
ऐसे रसामृत पूरित ह्वै भरिवोई करे अभिलाषनि भाँवरी ।
है अमुना जमुना घनआँनँद साँवरे संगम रँगनि साँवरी ॥

३

आँषिन कौं जो सुष निहारैं जमुना कैं होतु
सो सुष बषानैं न बनतु देषिवेई है ।
गोरे स्याम रूप आद रस जाकौ गुपत
प्रगट भावना बिसेषिवेई है ॥
जुग कूल सरस सलाका डीठि परसं ही
अंजन सिंगार रे अवरेषिवेई है ।
आँनँद के घन माधुरी की झर लागि रहै
तरल तरंगनि की गति लेषिवेई है ॥

४

स्याम अंग संगिनी विसाल रस रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा, सौं रही भोइ है ।
जमुना जननि मोद कारनि महा उदार
जग-ताप हारिनि पुनीत तेरो तोइ है ।
तीर पर्‌यौ आँनि दीन हीन जानि
मानि लै री बिनती करतु हा हा हठि हारि रोइ है ॥
आनंद के घन सौं पपीहा पन पालै
क्यौंहूँ बासनां मलीन मेरे अंतर कौ धोइ है ॥

जन्मोत्सव

१

कमला तप साधि अराधति हैं अभिलाष महोदधि मंजन कै।
हित संपति हेरि हिराय रही निति रीझि बसी मन रंजन कै॥
तिहि भूमि की ऊरध भाग दसा जसुदा सुत कें पद कंजन कै।
घन आँनंद रूप निहारन कौं ब्रज की रज आँषिन अंजन कै॥

२

नंद कै आँनँद कंद उदै बृजचंद बधायै सबै मिलि जाँहीं।
नैन हियै सुनि ही कैं जियैं अभिलाष चकोरनि तैं अधिकाहीं॥
दूध दहीरु मही की नदी बही गोकुल गाँव गिर्यारिनि माँहीं।
आँनँद कौ घन चौंपन सौ अति ही बरसै सरसै हित छाँहीं।

३

गोकुल घाँ तै कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है।
रानि जसोमति कोख उदै भयौ पूरन भाग अपूरब चंद है।
चाह समुद्र सुनै सरस्यौ घन आँनँद नैननि कौ रस कंद है।
आजु लषौ सजनी रजनी दुति दीसति औरइ ओप अमद है।

४

गोकुल गरयारिनि मै महा गह मह मांची
गोपी गोप उमहे बधायै ब्रज ईस कै।
कान्हा कुल मंडन प्रगट भये भूरि भाग
कृष्न आठवैं उदै रजनीस कै।
पूरी है कुलाहल की धुनि धारा चहूँ ओर
आनंद कौ घन घोरै बोलत असीस कौ।
कांमनां सुतरु छायौ फूल संग फल पायौ
औसर अनूप आयौ उरबक सीस कौ॥

राधा (सुजान)

१

रसिक सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की रसना
रसैं वै कौ रसीलौ रस धाम है।
जीवन बरसि कौ आनंदघन आपन पैं चातक तैं
कोटि जक आठौं जाम है।
आरत पराई सोई जाने न बपानैं बैन, देपैं
दसा औरै बिसरत बिसराम है।
साधनन हेरिये निवारियै सु बाधा बार
प्रानन अधार तिन्हैं राधा राधा नाम है।

२

अंग अंग स्याम रंग रस की तरंग उठैं, अति
गहराई हिय प्रेम उपनांन की।
उमगि उमगि भरी पूरि पानिप सुढार ढरी
मीठी धुनि करै ताप हरैं अँपियाँन की।
महा छवि भीर तीर गए तें न टरयौ जाय
मोहनता निधि बिधि पहुमि पै आंन की।
भांन की दुलारी[1] घनआँनँद जीवन ज्यारी
वृंदावन सोभा पिय सुख सोभा सरसानि की।

३

गोकुल नरेश नंद बंस कौ प्रसंस चंद सोभा सुषकंद
प्रेम अमी मै निवास है।
सौ नित चकोर के चुगन हित भरयौ ई रहै
सुनि हो सुजान कौ न माधुरी बिलास है।

---

[1]वृषभानु की पुत्री राधा; सूर्य पुत्री यमुना; दोनों ही अर्थ लग सकते हैं।

रुचि तजि होइ ऐसी, मेरे मन आई ऐसी
बाढ़ी घनआँनँद सुदृष्टि भर आस है।
जगत मै जोति एक कीरति ही होति अै पै
तो तैं राधे कीरति के कुल को प्रकास है।

वेणु-नाद

१

प्रेम अमी मकरंद भरे बहुरंग प्रसूननि की रुचि राजी।
देखत आज बनै वन राजहि रूप अनूपम ओज बिराजी।
राग रची अनुराग जची सुनि हे घनआँनँद बाँसुरी बाजी।
मैन महीप बसंत समीप मतौ करि सैन है साजी॥

२

तोरै लाज दामै सौ छुडावै धाम कामै
बिसरावै बिसरामै सुध सोखत सयान की।
चेटक लगावै मैन-आगहि जगावै प्रान पैठि
उमगावै ठेंठ मेटत गुमान की।
धुनि मे मौन थकिन जतावै गौन हौं न जानौ कौन
बिधि सीखी तीखी तान की।
मोह लागी गाजै घनआँनँद बिराजै आज
गाजै बन बसी स्याम सुंदरसुजान की।

३

सुनि बेनु कौ मादक नाद महा उनमाद सवाद छियौ न घिरै।
निसि द्यौस घुमेरिनि भौरि पर्‌यौ अभिलाप महोदधि हेरि हिरै।
घनआँनँद भीजतु सोचनि सूपतु थाकिनि दौरि सम्हारि गिरै।
तन तौ यह लाज घिर्‌यौ घर मैं बन मैं मन मोहन संग फिरै।

४

मोहन के बदन मिठास भरीं तानैं भिदि
मीठी ये लगति जब मिलै सब डाटि लै

भोरी ब्रज गोरीनि की लाज पाज तोरि तोरि
गिलै करि देत पेद बाधा पाई आटि लै।
ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढ़ति
काढ़ति घरनि तैं उपायनि उचटि लै।
बाँसुरी बाजनि बिराजै बन व्यापक ह्वै
देपौ गति जमुना की रापी राग पाटि लै।

५

हाथ चढ़ी हरि कै जब ते हरिबौइ करै कछु बैन बिचारै।
हाथ कियौ मन सौ घन हेली इते पर हाथ कु पाइ पसारै।
लैहै कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सवारै।
मोहन की बिसुवासिनि बाँसुरि ताननि मै बिस बाननि मारै॥

६

करि बैर बिसासनि बाँसुरिया सब ही कुल मैंड की ग्रैंड दलीं।
मँडराति रहै धुनि काननि मैं मन प्रान पगे रहै रंग रलीं॥
घन आँनँद क्यों बाचियै मुट भेर अचानक होति गिरारैं गलीं।
कित जौहिं कहा करैं कैसे रहैं बृजमोहन गौहन लागि गली॥

७

हम आपुनो सो बहुतेरो करै कि बचैं अवलोकनै एकौ घरी।
न रहै बसु नैसिक तान भिदै छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी।
घनआँनँद बौरति दौरति ठौरति ठूठ यौं पैयत लाजन री।
कित जाहिं कहा करैं कैसैं भरै यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी॥

८

मँडराति रहै धुनि काननि मैं ब्रज कै उपराजिवौई सी करै।
बृजमोहन सौहन जौहन के अभिलाष समाजिवौई सी करै।
घनआँनँद नाद अखंडित सौ सरसे सुर साजिवौई सी करै।
कित कौ यह बैरिनि बाँसुरिया बिन बाजैंऊ बाजिवौई सी करै॥

९

रीति या चेटक ही सौं भरी धुनि मै करै. धीरज दौहन बाँसुरी ।
घेरि लै आनिब साचै बनैं ब्रज गोरीन के परी गोहन बाँसुरी ॥
रीझ भिजै घनआँनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छौहन बाँसुरी ।
हाथ लियै रहै रैनि दिनाँ, मन मोंहन की मन मोंहन बाँसुरी ॥

१०

बंसी मै मोहन मंत्र बजाय कै मोहि लई बपुरी अबला सब ।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौ को बरनैऽरु सुन्यौ किनहूँ कब ।
ब्यापि रही चर थावर लै घनआँनँद घोर घमंडनि की भब ।
कानन मूँदेउ तैसीइ बाजति क्यौ भरियै करियै सु कहा अब ॥

११

पूरी लगी लाग राग बसि भई भलीभाँति थकित
चली है गति गही सुचि रलिका ।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियौ
कैसे रह्यौ परै पिली लालसानि कलिका ।
चातकी सहैज ब्रजगोरी घनआँनँद की
छूते मांन तांन बांन करी है विकलिका ।
कथनि कही न परै प्रेम-मत-बावरिन की,
काहू की न सुंनी, ऐसैं सुनी है मुरलिका ॥

रूप-माधुरी

१

झलकै अति सुंदर आनन गोरे छके दृग राजत काननि छ्वै ।
हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै ॥
लट लोल कपोल कलोल करैं कल कंठ बनी जलजावलि द्वै ।
अँग अँग तरंग उठै दुति की परि है मनौ रूप अवै धर च्वै ॥

२

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी
लसति ललित लोल चप तिरछानि मैं ।

छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुसिक्यानि में।
दसन दमक फैलि हियैं मोती माल होत
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
ऑनँद की निधि जगमगति छबीली बाल
अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरजानि मे॥

३

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहैं अमावस अंक उज्यारी।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल सी पै दृग सीतलता सुखकारी॥
कै छवि छायो सिंगार निहारि सुजान तिया तिन दीपति प्यारी।
कैसी फवी घनऑनँद चोंपनि सों पहिरी चुनि साँवरी सारी॥

४

मंजन करि कंचन चौकी पर बैठीं बाँधत केसन जूरो।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरो।
लाल जटित लस भाल सु बैंदी अरु सोहै सुचि माँग सिंदूरो।
ऑनँदघन प्यारी मुख ऊपर वारों कोटि सरद ससि पूरो॥

५

मीत मन भावन रिझावन कौ जान प्यारी
आई घनऑनँद घुमँडि आछी बनि है।
मंजन कै, अंजन दै भूषन बसन साजि
राजि रही भृकुटी जुटौं ही बंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई उलझनि छाई
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।
देखनि दुलार भोई बोलनि सुधा समोई
मुख की सुबास सास निसरति सनि है॥

६

चालि निकाई लखैं बिलपैं अचि पंगु मरालनि भाल बिसूरति।
पाय परैं न परैं परि पाय स चीत रसै थरसै न कछू रति।
घूँघट बीच मरीचिनि की रुचि कोटिक चंदनि कौ मद चूरति।
लाजनि सौ लपटी घनऑनँद साजन के हिय मे हित पूरति॥

७

सिसुताई निसि सियराई बाल ख्यालनि मैं ,
जोबन विभाकर उदोत आभा है रली ।
गमागम बस भयौ रस कौ समागम हो ,
आगै तैं अधिक अब लागनि लगी भली ।
सु कुच विकच दसा देषै मन आई मनौ—
चाहति कमल होन कौन रूप की कली ।
बडभागी रागी चलि ऐहै अलि, आनंद सौं
आँषिन सिरैहै मधु लैहै भावतो अली ।

८

नई तरुनई भई सुष आछी अरुनई
सरद सुधाधर उदोत आभा रद की ।
अंग अति लौनी लसै ललित लौनी सारी ,
भाग भरे भाल मैं दी बैंदी मृग मद की ।
बोलै 'हो हो होरी' घनआँनँद उमंग बोरी ,
छैल, मति छकै छवि हेरै रद छद की ।
रोरी भरि मुठी भुज उठी सोहै मनौ पराग—
मैं रली भली कली कोकनद की ॥

९

दाँव तकै रस रूप छकै विथकै मति यै अति चौपनि धावै ।
चौंकि चलै लषि छैल छलै सु छबीली छराए लौं छाँह न छावै ।
घूँघट ओट चितै घनआँनँद चोट वितै अँगुठा हि दिपव्वै ।
भाँवती गौ बस ह्वै रसिया हिय हौसनि सौसनि आँषि अँजावै ॥

१०

पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपैं तरुनाई के तेह तुली ।
अति ही गति धीर समीर लगैं मृदु हेम लता जिमि जात डुली ।
घनआँनँद मेल अलेल दसै विलसै सुलसै लट झूमि झुलि ।
सुठि सुंदर भाल पै भौहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥

११

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिए ।
त्यों इन आँखिनि बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आंन तिहारिए ॥
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयो सुजान सकोच औ' सोच सहारिए ।
रोकी रहै न दहै घनआँनँद बावरी रीझ के हाथनि हारिए ॥

१२

नित ही अपूरब सुधाधर बदन आछो
मित्र अंक आए जोति ज्वालनि जगतु है ।
अमित कलानि ऐन रैन द्यौस एक रस
केस तम सम रंग रांवनि पगतु है ।
सुनि जान प्यारी घनआँनँद तें दुनो दिपै
लोचन चकोरनि सों चोपनि खगतु है ।
नीठि डीठि परें खरकत सो किरकिरी लौ
तेरे आगे चंद्रमा कलंकी सो लागतु है ।

१३

बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई ता मे
तरुनाई उलहत मदन मैमंत है ।
अंग अग रंग भरे दल फल फूल राजैं
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है ।
मोहन मधुप क्यों न लटू ह्वै सुभाय भटू
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है ।
सोभित सुजान घनआँनँद सुहाग सींच्यो
तेरे तन बन सदा बसत बसंत है ॥

१४

चेटक रूप रसीले सुजान दई बहुतैं दिव नैक दिखाई ।
कौध मैं चौंध भरे चष हाय कहा कहौं हेरनि ऐसें हिराई ।
बातैं बिलाय गईं रसना पैं हियो उमगौ कहि एकौ न आई ।
सोंच कि संभ्रम हो घनआँनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥

सौंदर्य-प्रभाव

१

मंजु मोर चन्द्रिका सहित सीस साँवरे के
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम कुसुम के बरन झीने नीमा मधि
दीपति दिपति सुललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन बनितान के निहारि
मोती मालहि बिचारि धार गंग की।
आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै मीठी
धुनि उपजावै राग-रागिनी तरग की॥

२

डगमगी डगनि धरनि छबि ही के भार
ढरनि छबीले डर आछी बनमाल की।
सुंदर बदन पर कोटिन मदन वारौं
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की॥
काल्हि इहि गली अली निकस्यो अचानक ह्वै
कहा कहौं अटक भटक तिहिं काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनंद के घन छाई
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की॥

३

छबि सों छबीलो छैल आज भोर याही गैल
अति ही रँगीलो भाँति औचक ही आइगौ।
चटक मटक भरि लटकि चलनि नीकी
मृदु मुसिक्यानि देखें, मो मन बिकाइगौ॥
प्रेम सों लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान
मो तन चिताइ गाइ लोचन ढुराइगौ।
तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसाइगौ॥

४

नंद को नवेलो अलवेलो छैल रंग भर्यो
कालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ ।
बड़े वाके नैन महा सोभा के सु ऐन आली
मृदु मुसुक्याय मुरि मो तन चितै गयौ ॥
तब तें न मेरे चित चैन कहूँ रंचकहू
धीरज न धरै सो न जानै धौं कितै गयौ ।
नैकु ही मैं मेरो कछु मोपै न रहन पायो
औचक ही आइ भटू लूट सी बितै गयौ ॥

५

पीरे पीरे फूलनि की माला रुचि हिए धारि
वारि वारि ताही कौं सफल करैं काय कौं ।
ऐसे धीर कोंचे पूर प्रेम रंग राचे बीर
पीरे फल चाखैं अभिलाषैं नीके दाय कौं ।
डोलैं बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान
धाइ धाइ भेटैं भावतो ही दिस बाय कौं ।
उमगि उमगि घनआँनँद मुरलिका मैं
गौरी गाइ ढौरो सौ बुलावैं गोरी गाय कौं ॥

६

हम आपनो सो बहुतेरो करैं कि बचैं अवलोकनै एकौ घरी ।
न रहै बसु नैसिक ता भिदै छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी ।
घनआँनँद बौरति ठौरति डौरति दूठ यों पैयत लाजन री ।
कित जाहि कहा करैं कैसैं भरैं यह कान्ह की बाँसुरी वैर परी ॥

७

तेरे हित हेली अनुराग बाग बेली करि
मुरली गरज झूमि झूमि सरसतु है ।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सो पट
पीत कौं उमगि लै ले हियैं परसतु है ।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसतु है ।

लोचन सजल क्योंहूँ उघरैं न एकौ पल
ऐसें नेह नीर घनस्याम बरसतु है ॥

८

छबि की निकाई एहो मोहन कन्हाई कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है ।
बारिधि तरंग जैसे धुनि राग रंग जैसे
प्रति छिन अधिक उमंग सरसति है ।
किधौं इन नैननि सराहौ प्रान प्यारे रूप
रेलहि सकेलै तऊ दीठि तरसति है ।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरे
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ।

९

अमल अपूरब उजागर अखंड नित
जाहि चाहि चंदहि चिताइबो कलक है ।
तारनि प्रकासै मित्र मंडल मै मडन ह्वै
बन घन राजै रसनायक[1] निसक है ।
आनँद अमृत कंद बंदनीय प्राननि कौ
सुखमा संपत्ति हेरें काम कौन रंक है ।
चाह ते चकोरनि कौ चोंपनि सों लखि लेत
कृपा चंद्रिका मै नंदनंदन मयंक है ॥

१०

जो कछू निहारै नैन कैसे सो बखानै बैन
बिना देखी कहै तौ कहा तिन्है प्रतीति है ।
रूप के सवाद भीने बापुरे अबोल कीने
बिधि बुधि हीने की अनैसी यह रीति है ।

---

[1]रस का ज्ञाता । किंतु यह असंभव नही यह कवित्त रसनायक कवि । रसनायक ने कृष्ण काव्य पर खूब कविता की है । 'विरह-विलास' इस ी बहुत सुंदर रचना है । इस रचना मे कवि ने भ्रमर-गीत प्रसंग कवित्त मे लिखा है ।

सुख-दुख साथी मिलैं बिछुरैं अनंदघन
जान प्रान प्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है ।
औरहि न चाहैं पन पूरौ नित लै निबाहै
हारैं हँसि आपौ जीति मानैं नेह नीति है ॥

११

अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहो जबै तब रीझ छकौं ।
घनआँनँद जान चरित्र के रंगनि चित्र विचित्र दसा सौं थकौ ।
अन देखें दई जु कछू गति देखियै जीवहि जानै न ग्योरि सकौं ।
यह नेह सदेह अदेह करै पचि हारि बिचारि बिचारि जकौ ॥

१२

लाल पाग बाँधे, धरैं ललित लकुट काँधे
मैन सर साँधै, सो करन चित छाय कौ ।
जोबन झलक अंग रंग लकी रंक छूटी
कुटिल अलक जाल जिय अरुझाय कौ ।
गरै गुंजमाल उर राजत बिसाल, नखसिख
लौ रसाल अति लौनौ स्याम काय कौ ।
करतु अधीर वीर जमुना कै तीर तीर
टौना भर्यौ सो डोलतु ढुटौनां नंदराय कौ ।

१३

रसिया रंगीलौ ब्रजमोहन छबीलौ छैल
राधा रूप आसव छक्यौ रहै महा अछेह ।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग ही कौ
ताननि घुमाई घूमै पुलकि पसीजै देह ।
नेही सिर मौर और कौन ये सवाद जानैं
आनंद कौ घन चौंप चातक ह्वै भूल्यौ गेह ।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाइ हा हा
हौ तौ हारि परी पै घटै न कहूँ या कौ नेह ।

१४

चलि रे सुबल आज वाही कै बगर
कालिह जो ही मै लषाई, घनआँनँद सुझौवरै ।

छरहरैं गात मैडरात भौंर भाँवरि दै
छूटे बार, मोतिन की द्वै लर बनीं गरै ।
आँचरु उलटि सीस डारै कैं न जानै ।
क्यों निहारत ही हिमैं त्यों जु बात मन मैं धरै ।
औचकाँही कीत ईत डीठि कैं परत
पीठि दैनि देष नैन ईठ नीठिन कह्यौ करै ॥

१५

राधा रूप साधा साधिबे की महा चिंतामणि ।
गोरी गाय चाइनि च्वै सांवरों सम्हारई ।
ग्वैंडे आप टेरत है, नेह सौ निबेरत हैं ,
जातें भरि पावतु है भाव भरि ग्वारई ।
धौरी ढार ढौरी लै बुलाही, बोलि सौंप देत ,
काजर कुरंग नैनी चौंपनि चितारई ।
दौहन करतु ब्रज मौहन मनौरथनि ,
आनंद को घन रंग झलानि झमारई ॥

दान-लीला

१

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत काँपैं अरैल भए हौ ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन तए हौ ॥
लाज अँचै विन काज खगौ तिनहीं सो पगौ जिन रंग रए हौ ।
ऐंड़ सबै निकसैगी अबै घनआँनँद आनि कहा उनए हौ ॥

२

है उनए सुनए न कछू उघटै कत ऐंड़ अमैड़ अमानी ।
बैन बड़े बड़े नैननि के बल बोलति क्यों हौ इती इतरानी ॥
दान दिएँ बिन जान न पाइ है आइ है जो चलि खोरि बिरानी ।
आगैं अछूती गईं सु गई घनआँनँद आज भई मनमानी ॥

३

जाइ करो उहि माइ पै लाड़ बढ़ाइ बढ़ाइ किए इतने जिन ।
भीत की दौरनि खोरनि है लठता हठ ओरनि सों समझैं बिन !

दान न कान सुन्यो कबहूँ कहूँ काहे को कौन दियो सु लयो किन ।
टोडिक ह्वै घनआँनँद डाँटत काटत क्यों नहीं दीनता सों दिन ?

४

देहिंगी दान जु ऐहैं इतै नहीं पैहैं अबै सु किए को सबै फल ।
बाबा दुहाई सुहाई कहौ जिन जानि कैं मान छुटै न किए छल ॥
एक हि बोल दै जाहु चली झगरो सगरो मिट बात परै पल ।
नॉव पर्‌यौ अबला घनआँनँद ऐंठनि ग्वैठनि भौंह किते बल !

५

जीभ सँभारि न बोलत है मुंह चाहत क्यों अब खायों थपेरें ।
ज्यों ज्यों करी कछु कानि कनौड़ त्यों मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरें ।
खाइ कहा फल माई जने जिय देखौ विचारि पिता तन नेरें ।
कंज कनेरहिं फेर बड़ो घनआँनँद न्यारे रहौ कहौं टेरें ॥

६

लेहु भया गहि सीसन ते दधि की मटुकी अब कानि करौ कित ।
जैसे सों तैसे भए ही घनआँनँद धाइ धरौ जित की तित ।
एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फेरिये क्यों दुहूँ हाथ सकेरिए जो विधिना घर बैठें दियो वित ॥

७

गोद भरै बित धाइ कै जाइ धरो गहि मोद सों माइ के आगे ।
पेट परे को लखै फल ज्यों उपजे हौ सपूत सु भागनि जागे ॥
बॉटि है बोलि बधाई कमाई की जाति मे जाते महा पति पागे ।
बास दिएँ को यहै फल है घनआँनँद जो छिन दोस न लागे ॥

फाग

१

जब तै डफ बाज सुनी सजनी तब तै मति कौं कछु वो रई सी ।
मन की पन की गति जोब लखौ रितु औरै भई ओ रई सी ।
मचि है जब फागु कहा करि हौं अब ही करौ कान्हर पौरई सी ।
घनआँनंद छावतु गारिनि गावतु आवतु पारतु रौरई सी ॥

२

रोक्यौ रहै अब क्यौं करि कें मिलि पेलनि हौंस कौ ओज बढ्यौ है ।
राष्यौ दुराव दुराइ हियै अनुराग सु बाहिर आनि कढ्यौ है ।
साँवरे छैल गरयारिनि गारिनि गाइकें दोहरा एक पढ्यौ है ।
चौंपनि चौगुनियै पुट लागि है आजु तौ सौ गुनौ रंग चढ्यौ है ॥

३

गोरी बाल थोरी बैस लाल पै गुलाल मूठि
तानि कै चपल चली आनंद उठान सौं ।
बायैं पानि घूंघट की गहनि चहनि ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन बान सौं ।
कोटि दामिनीनि के दलननि दल मलि पाय
दाय जोति आइ झुंड मिली है सयान सौं ।
मीढिबे के लेखे कर मीढिबोई हाथ लग्यो
सो न लगी हाथ रहे सकुचि सखान सौं ।

४

राधा नवेली सहेली समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस प्यास भरी अँखियाँन सौं जोहै ।
डीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय हेत की बात सकै कहि को है ।
सैननि ही बरस्यो घनआँनँद भीजनि पैं रंग रीझनि मो है ।

५

रूपे हैं गोपाल ग्वाल मंडली लगौ ही संग सजे
पेल साजनि सौ उपमा न सरसी ।
इतै राधा नागरि विनोद विजै मूरति सहेलिनि के
जूथ फूली रूप कंज सरसी ।
धूघरी धमारि की माच नीक ही परै कैसे कोटि
काम कटक कै धस कै ध स रसी ।
आँनँद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं
होति है परस पर पैजनिप सरसी ।

६

कान्हर षिलार मोद मूरति उदार रूप जौवन कौ
मतवार होरी षेल षग्यौ है।
औसर सरस बषानैं आइ षेल माँड्यौ दरस
फल ताकी उमंगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार भरी भोमती की रोम रोम
राग भाग फागु जगमग्यौ है।
सषिनि समाज दामनीनि पुज फैलि परे
आनंद के घन पै विनोद करलाग्यौ है।

७

केसर के हौजन पै मौज मची आनंद की दामिनी
सी दमकत संग सुकुमारी की।
हँसन चलाइन बचाइन अदाइन सौं सुरन
दुरन कोर भीजी तनु सारी की।
रसिक कुँवर जू के हाथन की लाघवता कहाँ लौ
सराहौं उतै खेलन खिलारी की।
जघन सघन कंद कुचन कपोलन पै मन की
भरन तहाँ परन पिचकारी की।

८

षेलत षिलार गुन आगर उदार राधा नागरि
छबीली फाग राग सरसाति है।
भाग भरे भाँवते सौं औसर फन्यो है आँनि
आनंद के घन की घमंड दरसाति है।
औचक निसंक अंक चोपिषेल धूधरि मैं
सखीनि स्यौं सैननि ही चैननि लिहाति हैं।
केसू रंग ढोरि गोरे करि स्याम सुंदर कौं
गौरी स्याम रंग बीचि बूडि जात है।

९

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरै न पावति रूप रफै।
रिझवारि महा रसरासि षिलार सुगावति गारि बजाय डफै।

अति ही सुकुमार उरोजनि भार भरै मधुरी डग लंक लफै ।
लपटै घनआँनँद घायल ह्वै दग पागल छ्वै गुजरी गुलफै ।

१०

बैस नई अनुराग भई सु भई फिरै फागुन की मतवारी ।
कौंवरे हाथ रचैं मिहदी डफु नीकैं बजाय हरैं हियरा री ।
साँवरे भौंर कैं भाय भरी घनआँनँद सोंनिमै दीसति न्यारी ।
कान्ह है पोषति प्रान पियै मुष अंबुज च्वै मकरंद सी गारी ॥

विरहा-फाग

११

रंग लियो अबलानि के अंग तैं च्वाय कियो चित चैन कौ चोवा ।
और सबै सुख सौधे सकेलि मचाय दियो घनआँनँद ढोवा ।
प्रान अबीरहि फैंट भरें अति छाक्यो फिरैं मति की गति षोवा ।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यों बिरहा भयो फाग बिगोवा ॥

१२

पीरी परी देहँ छीनी राजत सनेह भीनी
कीनी है अनंग अंग अंग रंग बोरी सी ।
नैन पिचकारी ज्यों चल्योई करै रैन दिन
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।
कहाँ लौं बषानौं घनआँनँद दुहेली दसा
फागमयी भई जान प्यारी वह भोरी सी ।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा
बिरह अँगारनि मगरि हिय होरी सी ॥

१३

कहाँ एतो पानिप विचारी पिचकारी धरै
आँसू नदी नैननि उमगियै रहति है ।
कहाँ ऐसी राँचनि हरद केसू केसरि मैं
जैसी पियराई गात पगियै रहति है ।
चाँचरि चौपही हू तो औसर ही माचति पै
चिंता की चहल चित लगियै रहति है ।

तपनि बुझे बिन आनँदघन जान बिन
होरी सी हमारे हिये लगिये रहति है ॥

१४

दसन बसन बोली भरियै रहै गुलाल
हँसनि लसनि त्यों कपूर सरस्यो करै ।
साँसनि सुगंध सोंधे कोरिक समोय धरे
अंग अंग रूप रंग रस बरस्यो करै ।
जान प्यारी तो तन अनंदघन हित नित
अमित सुहाय राग फाग दरस्यो करै ।
इतै पै नवेली लाज अरस्यो करे जु प्यारो
मन फगुवा दैं गारी हूँ कों तरस्यो करै ॥

१५

घर ही घर चौचँद चाँचरि दै बहु भाँतिनि रंग रचाय रह्यो ।
भरि नैन हिये हरि सूझि सम्हार सबै करि नाकनचाय रह्यो ।
घनआँनँद पै ब्रजगोरिनि कौं नख ते सिखलौं चरचाय रह्यो ।
लखि सूनौ सकै कित रावरौ ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यो ।

१६

रंग भर्‌यौ उन सूषति हौं उन सौंधौ रच्यौ भई हौं नकवानी ।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो दृग आवतु है भरि पानी ।
ऐंच तचीं हम सीरी परैं पिय मो हिय चोप गुली सुष दानी ।
आँनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ।

१७

घनआँनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै पौरिनि सौं ।
करि प्रीति पतंग कौ रंग दिनां दस दीसि परै सब ठौरनि सौं ।
यह औसर फागु कौ नीको फव्यौ गिरिधारी हिले कहूँ टौरनि सौं ।
मन चाहतु है मिलि षेलनि कौ तुम षेलत हौ मिलि औरनि सौं ।

१८

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन
रातैं जैसे बीतत सुने तें डफ घोर कौं ।

कोऊ उठै तान गाय भान बान पैठि जाय
चित बीच, एरी पै न पाऊँ चित चोर कों ।
मची है चुहल चहूँ ओर चोप चाँचरि सों
कासों कहौं सहौं हौ वियोग झकझोर कों ।
मेरो मन आली वा बिलासी बनमाली बिनु
बावरे लों दौरि दौरि परै सब ओर कों ।

१९

सोंधे की बास उसासहिं रोकत चंदन दाहक गाहक जी कौ ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही कौ ।
राग विराग धमार त्यौं धार सी लौटि पर्यो ढंग यों सब ही कौ ।
रंग रचावन जान बिना घनआँनँद लागन फागुन फीको ॥

गोपी-प्रेम

१

एक डोलै बेचति गुपालहि दहेडी धरै
नैंननि समान्यौं सोई बैननि जनातु है ।
ओर उठि बोलै आगैं ल्याइ री कहा है मोल
कैसों जम्यौ है जग सवादै ललचातु है ।
ऑनँद कौ घन छायौ रहतु सदाई ब्रज
चौपनि पपीहा लौं चहुँघां मँडरातु है ।
गोकुल बधूनि की बिकानि पै बिकाई—
रह्यौ गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकातु है ॥

२

बात कही उन रातिन की अब ही तैं कहौ दिन कैसे बितैयै ।
चातकी ह्वै घनआँनँद ओर चकोरी भयै ब्रजचंद चितैयै ॥
बाढ़ि परी अभिलाष नदी अति कौं न बनाव की नाव बनैयै ।
चीर लिये सु दिये हरि हेली हिये न दिये घर लै कहा जैयै ॥

३

ब्रजनाथ कहाय अनाथ करी कित है हित रीति में भीति नई ।
न परेखो कछू पै रह्यौ न परै ठकुराइनि प्रीति अनीति मई ॥

घनआँनँद जानहि को सिखवै सुख ई रस सींचि जु बेली बई ।
सुधि भूल सबै हिय मूल सलै हमसों हरि ऐसे भए ए दई ॥

४

वेई कुंज पुंज जिन तरें तन बाढ़तु हो
तिन छाहँ आएँ अब गहन सो गहि गो ।
सरित सुजान चैन बीचिन सों सींची जिन
वही जमुना पैं हेली वह पानी बहिगो ।
वहै सुष स्रम स्वेद समै को सहाय पौन
नाहि छियै देह दैया महा दुख दहिगो ।
वे ई घनआँनँद जू जीवन को देते तिनही
को नाम मारिनि के मारिबे को रहिगो ॥

५

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचनि लोचन जात जरे ।
हित पोष के तोषतु प्रान पले बिललात महा दुख दोष भरे ।
घनआँनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ॥

६

तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी
सब सुख संग लै वियोग दुख दै चले ।
सींचे रस रंग अंग अनंगनि सौंपि
अंतर मैं विषम बिषाद बेलि वै चले ।
क्यों धौं ये निगोडे प्रान जान घनआँनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले ।
अति ही अधीर भई पीर भीर घेरि लई
हेली मन भावन अकेली मोहिं कै चले ॥

७

रैन दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखियाँ झरना सी ।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी ।
चौचँद चार चबाइन के चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी ।
यौं मरिये भरियै कहि क्यों सु परौ जनि कोऊ सनेह की फाँसी ।

८

सुधा ते स्रवत बिष फूल में जमत सूल
तम उगिलत चँद भई नई रीति है।
जल जारै अंग और राग करै सुर भंग
संपति बिपति पारै बड़ी विपरीति है।
महागुन गहै दोषै, औषधि हूँ रोग पोषै
ऐसे जान रस माहि बिरस अनीति है।
दिननि को फेर मोहिं तुम मन फेरि डार्‌यो
अहो घनआँनँद न जानौ कैसी बीति है।

९

कारी कूर कोकिल कहाँ को बैर काढ़ति री
कूकि कूकि अब हीं करेजो किन कोरि लै।
पैंड परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यों हीं
चातक घातक त्यों ही तुहूँ कान फोरि लै॥
आनँद के घन प्रान जीवन सुजान बिना
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौं करै आवन बिनोद बरसावन वे
तौ लौ दे डरारे बजमारे घन घोरि लै॥

१०

सुखनि समाज साज सजे तिन सेवैं सदा
जित नित नए हित फंदनि गसत हौ।
दुख तम पुंजनि पठाय दै चकोरनि पैं
सुधाधर जान प्यारे भले ही लसत हौ।
जींव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ॥

११

काहू कंज मुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैं
फूले रस भूले घनआँनँद अनत हीं।

कैसें सुधि आवै बिसरें हूँ हो हमारी उन्है
नए नेह पागे अनुराग्यो है मन तहीं ।
कहा करैं जी तैं निकसति न निगोड़ी आस
कौने समुझी ही ऐसी बनि है बनत हीं ।
सुंदर सुजान बिन दिन हीन तम सम
बीतै तमी तारनि कतारनि गनत हीं ॥

१२

जहाँ तैं पधारे मेरे नैनन हीं पाँव धारे
बारे यै बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ ।
आतुर न होहु हा हा नेकु फैंट छोरि बैठो,
मोहि वा बिसासी को है ब्योरो बूझिबो घनो ।
हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसै आई
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ ।
झूठ की सचाई छाक्यो त्यौं हित कचाई पाक्यो
ताके गुन गन घनआँनँद कहा गनौ ॥

१३

मित्र के पत्र हि पावत ही उर काम चरित्र की भीर रची है ।
सीस चढ़ावनि ऑंषिनि लावति चुंबन की अति चौंप रची है ।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौंनि अची है ।
छाती सौ छावत ही घनआँनँद भीजि गई दुति पाति नची है ॥

प्रेम-पत्रिका

कान्ह तेरी पाती तुम ही सुनाइ हौं हाइ हाइ फिरि कहूँ जौ पाइ हौ।
कटुक प्रीति कौ स्वाद मिठास भर्‌यौ महा द्वै रसनौं करि किलक कहौ बरनै कहा।
जानैं विरही प्रांन और कैसैं बनैं तीषी तरल सु बात कहत रसना छुनैं।
अब न सहै ते ओर लहैं पर पीर कौ धनि धनि है ब्रजनाथ तिहारे धीर कौ।
सुषी रहौ सुष दैन हमारी हम भरैं, बाँकौ बार न होइ असीम सदा करैं।
अकथ कथा की पाती छाती है भई नैंक लागि पिय बाँचौं दूरि भयै दई।
बिसरि गई बिसवासी सरक सनेह की मुरली बेधनि बेधी गति मन देह की।
धरि दूरि पहिचानि निकट की को कहै सुधि भूले सब भाँति परेषनि जो दहै।
वृंदावन घन कुंजैं देषति हैं जबै पात फूल फल डारी बिराजत हौ सबैं।
ढिग ह्वै यौं दुष देत दूरि तै दूरि से हाथ न लागत हाइ रहै हौ पूरिसैं।
बिवस बिसूरि बिसूरि राति दिन बीतई, सब बिधि हारी हाइ चिरह बल जीतई।
चेटक चितहि लगाइ नि चीते हो भले जुवती जन मन गंजन घातनिं ही पले।
पन मे सुर करौ निवारि अनीति कौं प्रेम परम प्रवीन एक रस रीति कौं।
जानि बूझि आनाकानी दयाल न दीजियै दुषिया जिय कौ जतन कछु तौ कीजियै।
या बिधि बृज बसि रहै बिसासी साँवरे तुम ही देहु बताय सबै विधि भाँवरे।
कँवल नैन वह चितवनि सालनि है दई बेध्यौ हियो हु सार सु सार कपट मई।
अब पिय निपट न करियै हरियै कदन कौं पाई डार कित मूँड चढ़ावत मदन कौ।
सुंदर रसिक सजीवनि तुम ही तै जियैं, तुम बिनु कहुँ न रहैं कहै सौ है कियैं।
औषिन कहा दिषावैं मन बैठे रहौ निकसि गये तजि नेह प्रॉन पैठे रहौ।
धरी धरोहरि पिय की प्रान सुदांम है जब चाहौ लेहु जगावति जाँम हैं।
सदा सुषी सुष देत रहौ दुप पावन नोहीं कीरति जौन्ह सु जगममै जसुदासुत यौं हीं।
मंगल मूरति सबनि कौ सुष लै बिसतारौ हम निपटै रावरी हैं आसरौ तिहारौ।
तुम्हरी कुसर कुसर सदा ब्रज मै नित है हौं ओर भाँति कहि को सकै प्रीतम सौ लै हौ।
नित सुहाग पागी रहै ब्रजनाथ व गुसांई आँनंदघन[1] उनए रहौ निसि बासर ह्योंई।
तुम चाहौ सु करौ जु सहि कछु बनि कहैं आँनंदघन रस-रासि चातकी ह्वै रहै।
या पाती कौं (सँ) देस पथिक प्राणै लहै आस निगड़ समेत चलन उन यौं रहौ।

---

[1] ब्रजनाथ तथा गुसांई आंनंदघन का संबंध संभवतः शिष्य गुरु का था। ब्रजनाथ को निगुर्णी नाथ संप्रदाय की परंपरा मे होना चाहिए जिसमे घनानंद, सोमनाथ आदि थे।

विरह-निवेदन

१

घनआँनँद प्यारे सुजान सुनौ जिहि भाँतिनि हौं दुख सूल सहौं ।
नहि आवनि औधि न रावरी आस इतेक पै एक सी बाट चहौं[1] ॥
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ उत्तर कौन कहौं ।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हू हा पिय दूरि तें पाय गहौं ॥

२

घन आँनँद मीत सुजान हू हा सुनिए बिनती कर जोरि करैं ।
अरसाहु न नेक रिसाहु अहौ धरि ध्यानहि दूर सौं पाय परैं ।
मन भायो बियोग मैं जारिबो ज्यों त्यों तिहारी सौं नीकें जरैं ऽऽ मरैं ।
पै तुम्हे मत कोऊ कहौ हितहीन सु या दुख बीच अमीच मरैं ॥

३

इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजियै जू ।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू ।
घनआँनँद जीवन प्रान सुजान तिहारियै बातिन जीजियै जू ।
नित नीके रहो तुम चाडु कहाय असीस हमारियौ लीजियै जू ॥

४

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह
कैसे करि जिय की जरन सो जताइये ।
महा निरदई दई कैसें कै जिवाऊँ जीव
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौ दुराइये ।
दुख के बखान करिबे कौं रसना कैं होति
ऐ पै कहूँ वाकौ मुख देखन न पाइये ।
रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पइये, भाग
आपने ही ऐसे दोप काहि धौं लगाइये ॥

---

[1] चाह भरी दृष्टि से देखना ; उत्कंठित होकर प्रतीक्षा करना ।

५

तपति उसास औधि रूँधिए कहां लौ दैया,
बात बूझे सैननि ही उतर उचारियै ।
उडि चल्यो रंग, कैसे राखिये कलंकी मुख
अनलेखे कहां लौ, न घूंघट उघारियै ।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैस
चित चढ़ी मूरति सुजान क्यों उतारियै ।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥

६

अंतर उदेग दाह आँखिन प्रवाह आँसू
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोइबौ न जागिबौ हूँ हँसिबौ न रोइबौ हूँ
खोय खोय आप ही मैं चेटक लहनि है ।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन
बिरह बिषम दसा मूक लौ कहनि है ।
जीवन मरन जीव मीच बिना बन्यो आय
हाय कोन बिधि रची नेही की रहनि है ।

७

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल
थाके ये विकल नैना ताहि नपि नपि रे ।
हिए मै उदेग आगि लागि रही रात द्यौस
तोहि कों अराधौ जोग साधौं तपि तपि रे ।
जान घनआँनँद यों दुसह दुहेली दसा
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे ।
जीव तें भई उदास तऊ है मिलन आस
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ।

८

तेरे देखिबे कों सब ही तें अनदेखी करी
तू हूँ जो न देखै तो दिखाऊँ काहि गति रे ।

सुनि निरमोही एक तोही सों लगाव मोही
सोही कहि कैसे ऐसी निठुराई अति रे।
बिष की कथानि मानि सुधा पान कर्‌यो जान
जीवन निधान है बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआँनद क्यों
हति कै हितूनि कहो काहू पाई पति रे।

९

आसा गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती
पूरो पन सिंधु मैं बूडत न सकाय हौ।
दुख दव हिय जारि अतर उदेग आँच
निरंतर रोम रोम त्रासनि तचाय हौ।
लाख लाख भाँति की दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौ चलाय हौं।
ऐसें घनआँनँद गही है टेक मन माहि
एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौ।

१०

मेरो जिय तोहिं चाहै तू न तनकौ उमाहै
मीन जल कथा है कि याहू ते बिसेखिये।
ता बिन सो मरै छूटि परै जड कहा करौ
हौं न भरौ न मरौ जान हिए अवरेखिए।
पल को बिछोह आगे कलपो अलप लागै
बिलपौं सदाई नेक तलफनि देखिए।
सूनो जग हेरौं रे अमोही कहि काहि टेरौ
आनँद के घन ऐसी कौन लेखें लेपिए॥

११

भए अति निठुर मिटाय पहिचान डारी
याही दुख हमैं जक लगी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि
हमैं सूल सलनि सो केहूँ न भुलाय है।

मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहिले तौं तब,
अब जिय जारत, कहो धौ कौन न्याय है ?
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू
काहू कलपाय है सु कैसे कल पाय है ॥

१२

चोर्‌यो चित चोपनि चितौनि मैं चिन्हारी करि
चाह सी जनाय हाय मोहिकै मनो लियो ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान भोरे प्रान
फांसी तें सरस हांसी फंद छंद सों दियो ।
छलनि छबीले आय छाय घनआँनंद यों
उघरे बिसासी अंत निरदै महा हियो ।
बारी मति हारी गति कहां जाहि नाहि ठौर
मानत परेखौ देखौ हितू ह्‌वै कहा कियो !

१३

वहै मुसकानि वहै मृदु बतरानि वहै
लड़काली बानि आनि उर मै अरति है ।
वहै गति लैनि औ बजावनि ललित बैन
वहै हँसि दैन हियरा ते न टरति है ।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है ।
आनँदनिधान प्रान प्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भांतिन सौ बेसुधि करति है ।

१४

एकै आस, एकै बिसवास, प्रान गहै बास,
और पहिचान इन्हे रही काहू सों न है ।
चातक लौं चाहै घनआँनँद तिहारी ओर,
आठों जाम नाम लै बिसारि दीनौ मौन है ।
जीवन अधार प्रान सुनिये पुकार नेक,
आनाकानी दैबौ दैया घाय कैसो लोन है ।

नेह निधि प्यारे गुन भारे ह्वै न रूखे हूजै
ऐसो तुम करौ तौ बिचारन के कौन है !

१५

आनाकानी आरसी, निहारिबो करौगे कौ लौं
कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलि है ।
मौनहू सों देखिहौ कितेक पन पालि हौ जू
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलि है ।
जानि घनआनँद यों मोहि तुम्हैं पैज परी
जानियैगो टेक टरैं कौन धौ मलोलि है ।
रुई दिए रहौगे बहराइबे की कौ लौं
कब हूँ तो मेरियै पुकार कान खोलि है ।

१६

अंतर मैं बासी पै प्रबासी कैसो अंतर है
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ ।
लोचननि तारे ह्वै सुझावो सब, सूझौ नाहिं
बूझी न परति ऐसी सोचनि कहा दहौ ।
हौ तौ जान राय जाने जाहु न अजान या तें
आनँद के घन छाया छाय उघरे रहौ ।
मूरति मया की हा हा सूरति दिखैए नेकु
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौ लहा लहौ ।

१७

कौन की सरन जैये आपु त्यों न काहू पैये
सूनो सो चितैये जग दैया कित कूकियै ।
सोचनि समैये मति हेरत हिरैये उर
आँसुनि भिजैये ताप तैयै तन सूकियै ।
क्यों करि बितैयै कैसै कहा धौ रितैये मन
बिना जान प्यारे कब जीवनि तें चूकियै ।
बनी है कठिन महा मोहि घनआँनँद यों
मीचौ मर गई आसरो न जित ढूकियै ।

१८

कहौं जौ सँदेसो ताको वड़ोई अँदेसो आहि,
तन[1] मन् वारे की कहै ऽव को सुनै सु कौन ।
निधरक जान अलवेले निरषक[2] ओर
दुखियाँ अहैव[3] कहा तहाँ[4] की[5] उचित हौं[6] न
पर-दुख-दलन को प्रभंजन हौ,
ढरकौ हैं देखिकै बिबस बकि परी मौन
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू
लालन-सुबास सों मिलाय हू सकत पौन ॥

१६

एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन, बारी
तो सो और कौन मनै ढरकौ ही बानि दै ।
जगत के प्रान ओछे बडे सो समान,
घनआँनँद निधान सुष दान दुषियानि दै ।
जान उजियारे गुन भरे, अति मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै ।
बिरह बिथा की मूरि आँखिन मै राषौ पूरि
धूरि तिन पायनि की हा हा नैकु आनि दै ॥

२०

पर-काजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा की समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।

---

[1] न्हानै
[2] निपरक
[3] कहै ऽब
[4] इत की, ५ तहाँ कों
[5] हौ
[6] मिलाय हसत कौन

घनआँनँद जीवन दायक हौ कछु मेरियौ पीर हिएँ परसौ ।
कब हूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहिं लै बरसौ ॥

२१

घनआँनँद जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसैं ।
सु न जानिए धौं कित छाय रहे दृग चातिक प्रान तपे तरसैं ।
बिन पावस तो इन्हे थ्यावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नितही अँखियाँ उघरी बरसैं ।

२२

सावन आवन हेरि सखी मन भावन आवन चोप बिसेषी ।
छाए कहूँ घनआँनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूल न लेषी ।
बूँदैं लगै सब अंग दगै उलटी गति आपने पापनि पेषी ।
पौन सों जागत आगि सुनी ही पै पानी सों लागत आंपिन देषी ।

२३

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत ,
देखै कहा ? सपनो हूँ न देखत, नैन यों रैनि दिना झर लावत ,
जौ कहूँ जान लखैं घनआँनँद तौ तन नेकु न औसर पावत ,
कौन वियोग-भरे असुँवा ? जु सँजोग मै आगेई देखन धावत ।[1]

२४

बिरहा रवि सों घट व्योम तच्यो बिजुरी सी खिवैं इकली छतियाँ ।
हिय सागर तें हम मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ ।
घनआँनँद जान अनोखी दसा न लखौ दई कैसे लिखौं पतियाँ ।
नित सावन डीठी सु बैठक मै टपकै बरुनी तिहि ओलतियां ॥

२५

किसुक पुंज से फूलि रहे सुलगी उर दौ जु वियोग तिहारें ।
मातो फिरै न घिरै अबलानि पैं जान मनोज यों डारत मारें ।

---

[1] वियोग मे आँसुओं को कोई क्यों अपनावेगा यदि वे संयोग में (आनंद के कारण) शरीर से पहले प्रिय से मिलने (आँखों में) न आ जावें । अथवा आँसुओं की वियोग वेदना मुझ से पहिले प्रिय से मिलने दौड़ आती । आँसुओं को किस का इतना अधिक दुःख है जो मुझे नहीं ?

ह्वै अभिलाषनि पातनि पात कढ़ै हिय सूल उसासनि डारें।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआँनँद एकहि बार हमारे॥

२६

हम सों हित कै कितकों हित हीं चित बीच वियोगहि बोय चले
सु अखैबट बीज लों फैलि पर्‍यो बनमाली कहाँ धों समोय चले।
घनआँनँद छाए बितान तन्यो हमे ताप के आतप खोय चले।
कबहूं तिहि मूल तौ बैठिए आय सुजान ज्यों हाय कै रोय चले॥

२७

जब तें तुम आवन आस दई तब तें तरफौं कब आय हौ जू।
मन आतुरता मन ही मै लखौ मन भावन जान सुभाय हौ जू।
बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि वियोग बिताय हौ जू।
सरसौ घनआँनँद वा रस कों जु रसा रस सो बरसाय हौ जू॥

२८

अभिलाषनि लाषनि भाँति भरीं बरुनीन रुमाँच ह्वै काँपति है।
घनआँनँद जान सुधाधर मूरति चाहनि अंक मै चाँपति है।
ढिग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चौंपहि झाँपति है।
जब ते तुम आवनि औधि बदी तब ते अँखियाँ मग माँपति हैं॥

२९

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवनि औधि बदी।
बरसौ कितहूँ घनआँनँद प्यारे पै, बाढ़ति है इत सोच नदी॥
हियरा अति औंटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुन मैन मदी।
कब आय हौ औसर जान सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी॥

३०

लाखनि भांति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवडे पंथ निहारैं।
लाडिली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मै पन धारैं।
यों रस भीजे रहैं घनआँनँद रीझे सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अंसुवानि सों रावरे पाय पखारैं॥

३१

छवि को सदन मोद मंडित बदन चंद
तृषित चषनि लाल कब धौ दिखाय हौ।

चटकीली भेप करें मटकीली भाँति सौही
मुरली अधर धरें लटकत आय हौ।
लोचन दुराय कछू मृदु मुसिक्याय नेह
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे
कृपानिधि आनंद को घन बरसाय हौ॥

३२

मूरति सिंगार की उजारी छवि भाँति
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आजिहौं।
रति रसना सवाद पावडे पुनीतकारी
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सो माजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगनि मैं
बोरि सब अंगनि अनंग दुख भाजि हौं।
कब घनआँनंद ढरौंहीं बानि देखै सुधा
हेत मन घट दरकनि सु बिराजि हौं॥

३३

रस रंग भरी मृदु बोलनि को कब काननि पान कराय हौ जू।
गति हंस प्रसंसित सों कबधौ सुख लै अंखियानि मैं आय हौ जू।
अभिलापनि पूरित ह्वै उफन्यो मन तें मन मोहन पाय हौ जू।
चित चातक के घनआनंद हौ रटना पर रीझनि छाय हौ जू।

३४

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
कैसे रहै प्रान, जो अनखि अरसाय हौ।
तुम तो उदार दीन-हीन आनि पर्यौ द्वार
सुनिये पुकार याहि कौ लौं तरसाय हौ।
चातक है रावरो अनोखो मोहि आवरो
सुजान रूप बावरो बदन दरसाय हौ।
बिरह नसाय, दया हित मैं बसाय,
आय हाय कब आनंद को घन बरसाय हौ॥

३५

रूप उजियारे जान प्राननि के प्यारे कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह महा तमै ।
सुखद सुधा सी हँसि हेरनि पिवाइ पिय
जियहि जिवाइ मारिहौ उदेग सेज मैं ।
सुंदर सुदेस आखैं बहुर्यौ *बसाय आय
बसिहौ छबीले जैसे हुलसि हिएं रमै ।
ह्वैं है सोऊ घरी भाग उघरी अनंदघन
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥

३६

ह्वै है कौन घरी भाग भरी पुन्य पुंज फरी
खरी अभिलाषनी सुजान पिय भेटि हौं ।
अमी ऐन आनन कौ पान प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करि कै वियोग ताप मेटि हौ ।
गाढ़े भुज दडनि के बीच उर मंडन कों
धारि घनआँनँद यों सुखनि समेटि हौं ।
मथत मनोज सदा मो मन पै हौं हूँ कब
प्रान पति पास पाय तासु मद फेटि हौ ॥

३७

घूमत सीस लगै कब पाइनि भाइनि चित्त मै चाह घनेरी ।
आँखिन प्रान रहे करि थान सुजान सुमूरति माँगत नेरी ।
रोम हि रोम परी घनआँनँद काम की रोर न जाति निवेरी ।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि भुलैं नही सुधि लेहु सबेरी ॥

३८

किहि ठान ठनी हौं सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान कर्‌यौ ।
इहि सोच समाय उदेगन साय विछोह तरंगनि पूरि भर्‌यौ ।
सु सुनौ मन मोहन ताकी दसा सुधि सोंचनि आँचनि बीच रर्‌यौ ।
तुम तौ निहकाम सकाम हमै घन आँनँद काम सों काम पर्‌यौ ॥

फरौं कित दौर और रहौं तौ लहौं न ठौर
घर कों उजारि कैं बसत बन जोय है।
बनी आनि ऐसी घनआँनँद अनैसी दसा
जीवो जान प्यारे बिन जागैं गयो सोय है।
जगत हँसत यों जियत मोहि ता तैं नैन[1]
मेरो दुख देखि रोवो फिरि कौन रोय है ?

५०

नैंन कहैं सुनि रे मन कांन दै क्यों इतनौ गुन मेटि दियौ है।
सुंदर प्यारे सुजान कौ मंदिर बावरे तू हम ही ते भयौ है।
लोभीं तिन्है तनकौ न छिपायत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घन आँनँद आइ कै पाइ परौं इह न्याउ नयौ है।

५१

ए मन मेरे कहा करि तैं तजि दीन चल्यो जु प्रवीन है तो सौ।
ल्यायो न काहू वे आँखि तरैं, हौं कहूँ कबहूं करि तेरौ भरोसौ।
मीत सुजान मिल्यो सु भली अब बावरे मो सो भर्‌यौ कित रोसौ।
सोचत हौ अपने जिय मैं सपने न लहौ घनआँनँद दोसौ॥

५२

बिसु लै बिसार्‌यो तब कै बिसासी आपचार्‌यो
जान्यो हुतौ मन तै सनेह कछु खेल सो।
अब ताकी ज्वाल में पजरिबो रे भली भांति
नीके आहि असह उदेग दुख सेल सो।
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख
पर्‌यो आय औचक वियोग बैरी झेल सो।

---

[1]'हे आँखों मेरे दुःख को देख कर रोओ, तुम्हारे मर जाने पर कौन रोवेगा', यह मार्मिक करुणा घनानंद की कविता का केन्द्र है। वर्तमान् युग में, श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की "मै मर गया चलो मुझे गंगा में बहा आयें। मैं मर गया चलो मेरी याद भुला आयें" आदि मे इसी प्रकार की तीव्र वेदना अंतर्निहित रहती है।

रुचि ही के राजा जान प्यारे यो अनंदघन
होत कहा हेरे रक मान लीनौ मेल सो ।

५३

सोए बहुतेरौ मेरौ सोचहूँ निवेरौ हेरौ
हौ न जानौ कब धौ उनीदे भाग जगोगे ।
पीर भरे लोचन अधीर हौ न जानत जू
कौन घरी रूप कै र सोत जगमगोगे ।
अंग अंग तुम्हे कौलौं दहेगो अनंग कहूँ
रंग भरी देह जागि प्यारे संग खगोगे ।
चलौ प्रान, पलो परे दूरि, यौ कसमसौ क्यौं
बिना घनआँनंद कितेक दुख दगोगे ॥

५४

दृग नीर सौ दीठिहुँ देहुँ बहाय पै वा मुख का अभिलापि रही ।
रसना बिस बोरि गिराहि गसौ वह नाम सुधानिधि भाषि रही ॥
घनआँनँद जान सुबैननि त्यों रचि काल बचे रुचि साखि रही ।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय कारन यों जिय राखि रही ॥

५५

घर बन वीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौ
इते हू पैं मैं न भई नई बिरहा-मई ।
विपय उदेग आगि लपटैं अतर लागैं
कैसैं कहौं जैसे कछू तचनि महा तई ।
फूटि-फूटि टूक-टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियौ
बचियो अचंभो मीचौ निदर करै गई ।
आनँद के घन लखैं अन लखे दुहूँ ओर
दई मारी हारी हम आप हौ निरदई ॥

५६

अंतर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानि परौ अब कैसी करौ हिय का विधि धीरौं ।

जो घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहा प्राननि पीरौ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरनी मैं धँसौ कै अकासहि चीरौं॥

५७

सदा कृपा निधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ
अमानि-दान मान हौ समान काहि दीजिए।
रसाल सिधु प्रीति के भरे खरे प्रतीति के
निकेत नीति रीति के सुदृष्टि देखि जीजिए।
ठगी लगी तिहारियै सु आप त्यौं निहारियै
समीप ह्वै बिहारियै उमंग रंग भीजिए।
पयोद मोद छाइए विनोद को बढाइए
विलंब छाड़ि आइए किधौं बुलाय लीजिए।

५८

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे
खरे अबरनि भरे है उठि जान कौ।
कहि-कहि आवन सँदेसौ मन भावन कौ
गहि-गहि राखत हौ दै-दै सनमान कौ।
झूठी बतियान के पत्यान तें उदास ह्वै कै
अब न घिरत घनआँनँद निदान कौ।
अधर लगे है आनि करके पयान प्रान
चाहत चलन ये सँदेसौ लै सुजान कौ।

वियोग-बेली

बंगला-बिलावल

सलोने स्याम[1] प्यारे क्यों न आवो[2] ।
दरस प्यासी मरैं[3] तिनको जिवावो । १

कहाँ हौ[4] जू कहाँ हौ[4] जू कहाँ हौ[4] ।
लगे ए प्रान तुम सौ है[5] जहाँ हौ[4] ॥ २

रहौ किन प्रान[6] प्यारे नैन आगैं[7] ।
तिहारे कारने[8] दिन रैन[9] जागैं ॥ ३

सजन हित मानि कैं[10] ऐसी[11] न कीजै ।
भई है बावरी सुधि आनि[12] लीजै ॥ ४

कहीं[13] तब प्यार सों सुष दैन[14] बातैं ।
करौ[15] अब दूर ते[16] दुष दैन[14] घातैं ॥ ५

बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ ।
अकेली कै हमैं[17] ऐसे दुरे हौ । ६

---

[1]सलौनैं स्याम,
सलोने स्याम,
[2]आयो
[3]प्यासो मरें
[4]हो
[5]सो हौ
सौ है
[6]प्राण, रहौ अब क्यों न
[7] आगे
[8]कारण
[9]रात
[10]कै
[11]ऐसो
[12]आय, आन
[13]कहो
[14]देन
[15]करो
[16]तैं
[17]अकेलो कर हमे

सुहाई[१] है तुम्है[२] यह बात कैसैं[३] ।
सुखी हौ स्यॉंवरे[४] हम दीन ऐसैं[३] । ७
दिखाई दीजिए हा हा अमोही ।
सनेही है रुपाई क्यौंऽब सोही[४] । ८
तुम्हैं[५] निन सॉंवरे ये नैन सूने ।
हिये में दै लिये विरहा अभूने[६] । ९
उजारो जो हमें काको बसै हौ[७] ।
हमें यों रोइबो औरन हँसै हौ[८] ॥ १०
कहैं[९] अब कौन सों[१०] बिरहा कहानी ।
न जानी[११] ही न जानी[११] ही न जानी । ११
लिपैं[१२] कैसे पियारे[१३] प्रेम-पाती ।
लगे अँसुअन[१४] झरी ह्वै टूक[१५] छाती । १२
पर्‌यौ है आन के अैसे अँदेसौ[१६] ।
जरावे जीभ अरु कानन[१७] सँदेसौ[१६] । १३
दसा है अटपटी पिय आय[१८] देषौ ।
न देषौ तो परेषो है परेषौ है । १४

---

[१]सोहाई
[२]तुमें
[३]कैसे
[४]स्याम रे
[५]बिसोही, सौंही
[६]लै दिए बिरहा अजूने;
अभूनैं; अभूने;
[७]हो
[८]औ राय के औरन हँसै हौ,
हमे यों व राय कैं;
हमे यों रुवाय;
औरै हँसै हो;
[९]कहौ
[१०]सो
[११]जाने
[१२]लिपों
[१३]प्यारे
[१४]अँसुवा
अँसुवन
[१५]ह्वै टूक
[१६]अँदेसो
[१७]जीव अरु कानन;
जीभ अर, काननि
[१८]आनि

अजू ऐसे कहौ कैसे बितइये ।
अवधि[1] बिन हूँ सदा पैंडो चितइये । १५
अनोषी पीर प्यारे कौन पावै[2] ।
पुकारो मौन मै कहिवै[3] न आवै[2] । १६
अचंभे की अगिन अंतर जरे है[4] ।
परीं सीरी मरैं नाही मरै नाही[5] । १७
कहा जानो तुम्हारे जी कहा है ।
असोची मोहि तो सॉसो[6] महा है । १८
तिहारे मिलन की आसा न छूटै[7] ।
लाग्यौ मन बावरो तोर्‌यो[8] न टूटै[7] ।१९
अजों धुन[9] बॉसुरी की कान बोलै ।
छबीली छैल डोलनि संग डोलै ।२०
सलौनी[10] स्याम मूरत फिरै आगैं ।
कटाछै बान-सी[11] उर आन[12] लागै ।२१
मुकुट की लटक[13] हिय मे आय हालै ।
चितौनी बंक जिय मे आय[14] सालै ।२२
हँसन मे दसन दुति होत कौधैं ।
वियोगी नैन चेटक[15] चाय[16] चौधै ।२३

---

[1]अवध
[2]पावे, आवै
[3]कहवो
[4]जरो हों, जरो है
[5]परोसीरी मरो नाही मरो हों
परो सीरी मरो नाहीं भरो है;
परो सीसी मरो नाही भरौ हौ
[6]सी सो
[7]छूटे, टूटे
[8]तोरे
[9]अजू धुनि
[10]सलोंने
[11]से
[12]आनि
[13]चटक
[14]चितवनी बंक हियरा बीच
चितवनी बंक जियरा बीच
[15]भे इक
[16]चाहि

अधर को देप प्यासे प्रान[1] दौरैं ।
अमी के पान बिनु ह्वै बिवस बौरैं ।२४
अचानक आय भेंटनि[2] जब सतावै ।
कहौ तब की दसा कहि को बतावै ।२५

लगै लालन बिरह की तब[3] चटपटी ।
कहो कैसे सहौं ये गति[4] अटपटी ।२६
बहै तब नैन ते अँसुवान धारा ।
चलावैं सीस पै बिरहा[5] जु आरा ॥२७

इतै पै जो न पावौ[6] पीर प्यारे ।
रहैं क्यों प्रान ये बिरही बिचारे ।२८
सुहाई है तुम्है कैसे अनैसी[7] ।
कहैं[8] का सों करो तुम ही जु ऐसी ।२९

जरावै नीर तौ फिर को सिरावै ।
अमी[9] मारै कहौ जू[10] को जिवावै ।३०
जु[11] चंदा ते झरैं दैया अंगारे ।
चकोरन की कहो गति कौन प्यारे ।३१

अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे ।
करै बिरहा हमारे हाल ऐसे ।३२
अचंभो है अचंभो है महा जू[12] ।
सनेही ह्वै[13] कहौ कीन्हो[14] कहा जू ।३३

---

[1]प्यासी नैन
[2]मदन, मदना
[3]जब
[4]सहै कैसे कहौ इक गत; यह गति
[5]ये बिरह; यों बिरह
[6]पाऊँ, पावौ
[7]यह बात नैसी
[8]कहौ
[9]दई
[10]तब
[11]जो
[12]यहाँ जू
[13]हौ
[14]कीनो

हियो ऐसो कठिन कब तें कियो है।
बली अबलानि[1] मारन[2] पन[3] लियो है ।३४
करो अब सो[4] तुम्हैं आच्छी लगे जो।
जसोदानंद जैसे जस जगै हो[5] ।३५
तिहारे नाम के गुन बाँध डारी।
बिचारो जू बिचारी है बिचारी ।३६

दया दिपराय बिनती कीजिए जू।
परै पायन हिये धरि लीजिए[6] जू ।३७
भरोसो है भरोसो है भरोसो।
रही ब्रत धारि जू[7] अब तो परोसो[8] ।३८
रगीले हो छबीले हो रसीले।
न जू अपनीन[9] सौं हूजे गसीले ।३९

लगौ नीकें सबै[10] बिधि-प्रान संगी।
तिहारो मीन है[11] प्यारे तरगी ।४०
तुम्हैं बिनु क्यों जियें तुम ही बिचारो।
बचैं कैसे कहो तुम ही जु[12] मारो ।४१

रहौ[13] नीके अजू घनस्याम प्यारे।
हमारे हौ हमारे हौ हमारे ।४२
तिहारी हैं तिहारी है तिहारी।
बिचारी है बिचारी है बिचारी ।४३

[1]अब लीन
[2]मारे
[3]सुन
[4]जो; सो
[5]जो
[6]लाजिये
[7]धार जू
धर अजू
[8]परौसौ
[9]अबलानि;
अपनी व;
[10]भली
[11]प्रीति है;
मोह है;
[12]जो
[13]रहो

तिहारे[१] नाम पै हम प्रान वारैं।
जहाँ हौ जू[२] तहाँ रहियौ[३] सुपारे[४] ।४४

तुम्हैं[५] निसि[६] द्यौस मन भावन असीसैं।
सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं ।४५

लगै[७] जिन लाडिले जू[८] पौन ताती।
सुहाई[९] है हमै तुम कौं[१०] सुहाती ॥४६

गहौ[११] तुम ही जू प्यारे दीन[१२] दोपै।
दया की दृष्टि[१३] सौं फिर कौन पोपैं ।४७

सुरत कीजै विसारे[१४] क्यौं बनैगी।
विरहिनी यौं अवधि[१५] कब लौं[१६] गिनैंगी ।४८

हियो ऐसो कठिन कब ते[१७] कियौ है।
मिलो[१८] औरन हमै[१९] विरहा दियौ है ।४९

नहीं पाई परैं प्यारे[२०] लपैटैं।
कहो हा हा कहा धौ[२१] आहि पैटैं ।५०

[१]तुम्हारे
[२]जी
[३]रहिये
[४]सुखारे
सुपारो
[५]तुमें
[६]निस,
दिन
[७]लगौ
[८]को
[९]सोहाई
[१०]हौं
[११]गहौं
कहौ
[१२]दिनन
[१३]दीठि; दृष्टि
[१४]विसर की
[१५]अबध
[१६]तक
[१७]तैं; तक; लौ
[१८]मिलौ
[१९]अरु नेह सौं
[२०]प्यारी; न पाई ये परे प्यारे
[२१]किधौ आई
कहा धौं आह

भई सूधी सुनो बाँके बिहारी।
न करि है मान फिर सों हैं तिहारी।२१
चढ़ीं थी मूड़[1] अब पायन परैंगी।
कहौ जोई अजू सोई करैंगी।२२
दई कौं मानि के अब आनि[2] ज्यावो।
पियासी है पियारे रस पिवावो।२३
तिहारी ह्वै बिछुर क्यों[3] हूँ जियेगी।
बिरस घायल हिये ज्यों त्यों सियेंगी।२४
यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ।
रह्यौ पहिचानि[4] को हिय[5] मे न लेसौ।२५
बिसासिन[6] बाँसुरी फिर[7] हू सुनेगी।
कि यौंही सीस लो सिर को[8] धुनेगी।२६
न तोरो जी कहो क्यों ही ऽव[9] जोरी।
निगोड़ी प्रीति के दुख देन[10] डोरी॥२७
करी तुम तो[11] अजू[12] गुन खाँन[13] हाँसी।
परी गाढ़ी गरें[14] बिसवास फाँसी।२८
न छूटै जू न छूटे जू न छूटै।
ठगौरी[15] रावरे[16] बिरहा न[17] लूटै॥२९

---

[1] चढ़ाई मूड़
[2] मान; आन
[3] अजू कौं लौं; कछू क्यों हूँ;
[4] पहचानु
[5] ही
[6] बिसासी; बिसासनि; बिसाँसिन
[7] फिरि
[8] ऐसो रन; ऐसे रन; औसेरनि
[9] ये जीय; हूँ ब
[10] दै न
[11] अब तो
[12] अजी
[13] नृष घान
[14] गरैं
[15] ठगोरी, ठगोरी; ठगोरी;
[16] रावरी
[17] ब

हमारी[1] एक[2] तुम सों टेक प्यारे ।
मिले हम सों सकपटी[3] ह्वै गये न्यारे ।६०
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी ।
अहो ब्रजचंद क्यों पहिचान लोपी ॥६१
छबीले छैल तुम को पीर का की ।
बिथा की बात तें[4] छाती जु[5] पाकी ॥६२
सजीवन साँवरे[6] कब धौं[7] ढरोगे[8] ।
मरे[9] साधा विरह बाधा हरोगे ।६३
टरैं नाँहीं हिये ते हेत थाती ।
सँभारो[10] आय के प्यारे सँघाती ॥६४
बढ़ै आसा हिये भादों[11] नदी-सी ।
न दीसे कौ मसोसे भाँवरी सी[12] ।६५
तिहारी ह्वै[13] दुपारी बूझिबे क्यों ।
सुनौ सुख देन प्यारे दीन है यों[14] ।६६
दई मारीन की अब दया आनौ[15] ।
परैं पाँ दूर तैं ब्रजनाथ . मानौं । ६७

---

[1] हमारे
[2] है
[3] मिलन मै कै कपट;
मिले मे कै कपट;
मिले मे क्यों कपट,
[4] कथा तें;
थाक सों;
[5] जु; जो
[6] सँजीवन साँवरे
सजीवन स्याँवरे
[7] लों
[8] ढरोगे; ढरौगे;
[9] मरै, मरे
[10] सम्हारो
सँभारो;
सम्हारो,
[11] भेदों
भीदो
[12] नदी ह्वै कोस में भाँवरी सी;
न दासे को मसासे भाव री सी;
न दी से कौ मसो छोभा बरी सी।
[13] यों; है
[14] ज्यों
[15] आने, याने

सनेही हौ तुम्है सब गाँव जानैं[1] ।
सबै मिलि रावरे गुन को बखानैं ।६८

अजू अब सँग लागे प्रान प्यारे ।
सुनें जिन कान दें अवगुन तिहारे[2] ।६९

तिन्है घटिबात[3] कैसे सहि परी[4] है ।
बिना ही काज जियरा जूझि[5] मरि[4] है ।७०

हमै तुम तौ लगो सब भाँति नीके[6] ।
करौ किरपा हरौ यह साल ही के[7] ।७१

कहा वारैं[8] निछावर ह्वै[9] रही हैं ।
कहै कौलौ[10] कही है[11] जो[12] कही है[11] ।७२

रसिक सिर मौर ही[13] रस राषि लीजै ।
तनिक[14] मन मान के गुन चित्त[15] दीजै ।७३

धरै ये नाम कों अब नाम ऐसे[16] ।
दुहाई है[17] सुहाई ये परे कैसे ।७४

---

[1]सनेही ह्वै तुभे संग राछ जाने
[2]सुनो जस कान ने गुन लीन हारे;
सुने जिन कान मोहन गुन तिहारे ।
[3]तिने घर बात
[4]परे, मरे
[5]जूझ
[6]सों लगे सब बात नीके
[7]करो फिर पातरो ये साल ही के,
करो किरपा हरो यह साल ज्ही के,
करो किरपा इसे यह लाल जी के;
[8]वारौं
[9]न बावरि
[10]कब लौ
[11]है; है; कहै है
[12]जू
[13]हो
[14]तनक
[15]नाम के गुन बांध दीजै,
मन मान के गुन बीच दीजै ।
[16]धरैं पै न वाकौ अब नांव ऐसो;
धरैया नाव को अब नाव ऐसे;
धरे ये नाम को अब नाथ ऐसे,
[17]सुहाई है

सदा ते साँवरे[1] बिन मोल चेरी ।
घरनि ते काढ़ि[2] बन बंसी[3] न घेरी ।७५

किये[4] की लाज है ब्रजनाथ[5] प्यारे ।
बिराजौ[6] सीस पै जग मैं उज्यारे ।७६

सदा[7] सुष है हमें[8] तुम साथ आछे ।
लगी डोलैं छबीले[9] छाँह पाछे ।७७

तुम्हें[10] देपे तुम्हें भेटैं[11] भलै ही ।
जगैं सोवैंऽरु बैठैं यों चलैं ही ।७८

न न्यारी हैं[12] न न्यारी हैं न न्यारी ।
भई हैं प्रान प्यारे[13] प्रान प्यारी ।७९

हमारी तो[14] तिहारी एक बातैं ।
रँगीले रंग राती[15] द्योस[16] रातैं ।८०

सदा आनँद के[17] घनस्याम संगी ।
जियो ज्यावो[18] सुधा प्यावो[19] अभंगी ।८१

---

[1]सदा ते रावरी, सदन रावरी; सदा ते रावरी
[2]घरन ते काढ़ घरन ते काढ़ि,
[3]बन बासीन; गन बन सो न;
[4]किये
[5]ब्रजराज
[6]विरद
[7]सदा
[8]हमै
[9]छबीली, छबीले,
[10]तुमें
[11]भेटे
[12]बन मारी हैं
[13]प्यासी
[14]औ
[15]रासे
[16]दिवस
[17]की
[18]ज्या के
[19]प्या के, पावौ

गेय पद*

१

धमार तथा धनाश्री

एरी बन बाजी बाँसुरिया, कैसे रहूँ घर दैया।
कलमलात जियरा मिलवे को, है कोई धीर धरैया।
आग लगे यह लाज निगोडी, करिहै कहा चवैया।
आँनँदघन पिया उघर मिलोंगी, अब डर करत बलैया॥ १

२

कलिंगरा

बिलम न करिबे हरि के भजन को।
करत पलक में और नाहिन भरो सौतन को।
आय बन्यो है औसर नीको, कर ले मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरि गुन पूरन सुनि यस आँनँदघन को॥ २

३

सोरठ

मेरी बानी में बनवारी बसो, एक मुख करि गुनिन गसो।
असद अलाप अलापो न होई, सीस लताई तज नीके कसो।
मुरली मुरसो समोइ लीजिये, जो गावै राधिका सुर रस जसो।
आँनँदघन हित सरस्यो बरसो, सोई कहत हो कहाँ धो हसो॥ ३

४

सोरठ

लगन लगी है स्याम पियारे।
अब कैसे यह दुराव रहत है ब्रजमोहन उजियारे।
हौं इत कहत तिहारेई गुन निस दिन साँझ सवारे।
आँनँदघन इह मुरली तिहारी ए सब भेद उचारे॥ ४

---

*प्रस्तुत संग्रह मे वे पद जिन की भाषा पंजाबी है नहीं रखे गये हैं।

५

राग-पीलू

स्याम-घन तेरी य-घों घुरि बरसै ।
उघर-उघर मुरली परजन मैं सुर के घुरवा सरसै ।
रम्यौ रहत रैन-दिन राधे, रस-मूरत चातक लौं तरसै ।
ऑनँदघन नंदनंदन त्यों कौंध कहूँ दै दरसै ॥ ५

६

टोड़ी, धमार, ध्रुवपद

पिय के मन नैनन भावै, भावै तेरो वदन नीको ।
तेरे रूप रस ऐसे बस भयो प्रानपति जो न चाहे आनन काहू तिय को ।
रूप जोवन तोहिं दीनो करतार बनाए आली आनंद सब जिय को ।
प्रभु विलास नवल लाल रिसान लैत पठई आनंद सकल तिय को ॥ ६

राग काफी

१

मृदु तरवनि मे लसति ललाई ।
झमकि तहाँ पग धरत लाडिली, मनहुँ अरुनता आँनि बिधाई ।
महा रुचिर गोरी गुलफें मुक्तावलि फबि रही है सुहाई ॥
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई ।
जगमगि रह्यौ सुरंग जावक पर, सरस रसिक रचना जु बनाई ॥
रुचिर नखनि की मंजु मयूखनि, चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई ।
विविध न्यास अनियास प्रकासनि नट नागर लखि लेत बलाई ।
जब की कहा कहूँ ऑनँदघन जब पिय सँग नितंत सुखदाई ॥ ७

२

राग केदारौ

सरद निसि जामिनी फूली है, जग मगी जोंन छबीली छाई है ।
ए अवसर पुलिन रस-रास रुची, जमुना कूल अति ही अनुकूली है ।
श्री राधा मोहन नाचत गावत, रूप-गुन-कला-रस मूली है ।
ऑनँदघन अद्भुत बिलास झर बृंदावन देखत भूली है ॥ ८

३

राग-जैत श्री

रीझि रीझ मुख देखि रहैं

लाल, लाडिली की छबि मोहै, चकित भय कटु बैन कहै।

मोह, मोह मन खोह जात है, रूप गहर को मत न लहै।

आँनँदघन पिय रसिक मुकतमन भागन काए द्दगन चहै॥ ६

४

राग-सारंग

अति सुगंध मलयज घनसार मिलाइ-

कुसुम जल छिरकाइ उसीर-सदन बैठे,

मोहन, लै राधे-प्रान-प्यारी अति रंगन।

जमुना-तीर बनी-री कुंज त्रिविध-पवन सुखद पुंज,

परसत रोमाच होत छबीली-तरगन॥

वृंदाबन संपति, दंपति हुलसत बिलसत अति-ही,

अपनी भरि-भरि उमंगन

आँनँदघन अभिलाष भरे खरे-भीगें,

रस-सागर की अतुल तरंगन॥ १०

५

राग टोड़ी

रास करना मन कीनो सरद विमल, मधि तरत तनया तट सघन वन।

गावत सप्त सुर तीन ग्राम ताल जंत्र उघटित शब्द गति परत परन।

बंसी की धुनि सुनि धाई ब्रजनारि मनमथ वेदन कीनों प्रान हरन।

कोउ पति सुत छाड्यो स्याम सो स्नेह काढ्यौ प्रेम की तरंग ता मे लगी तरन।

ए सुख सोभा दिन-दिन यहै गृह सरस बधाई गीतन गाय।

आँनँदघन ब्रज जीवन जोरी रसिक सदा सहाय॥ ११

फाग

१

खमाती

निसा नींद न आवै, होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोना रूप रिझोना, उलह्यौ जोबन कोप।
अब ही ख्याल रच्यौ जु परस्पर मोहन गिरिधर भूप।
अब बरजे मोरी सास ननदिया, परी बिरह के कूप।
मुरली टेर सुनाय जगावे, यही बगर मे अनूप।
यह जिय सोच रही हों अपने जाय मिलि हों हरि केसो हूप
आनँदघन प्रभु गुलाल घुमड़न में एक हो रंग रंगे हों रूप

यह पद कुछ अतर के साथ भी मिलता है।—

अरी, निसि नींद न आवै, होरी खेलन की चोप।
स्याम-सलोना, रूप रिझोना, उलह्यौ जोवन कोप।
अब हीं ख्याल रच्यौ जु परस्पर, मोहन गिरधर भूप।
अब बरजति मेरी सासु-नँनदिया, परी बिरह के कूप।
मुरली टेरि सुनाइ जगावै, सोवत नदन अनूप।
पै जिय सोच रही हों अपने, जाइ मिलो हरि-हूप।
इत डर लोग, उत चोंप मिलन की, निरखि निरखिबो रूप।
आँनँदघन प्रभु गुलाल घुमड़न में, मिलि हों अँग-अँग गूप।

२

होरी खेलूँगी स्याम संग जाय हो
सजनी भागीन तें फागुन आयो
ओ भींजबें मेरी सुरंग चुनरियाँ
मै भींजवूं वाकी पाग॥
चोवा-चोवा चंदन और अरगजा
रंग की फरत फुँवार।
लाज निगोड़ी रहैं चाहे जावै
मेरो ऽहीयरो भरो अनुराग

आँनँदघन खेलो सुघड़ बालम सों
मेरी रहीयो है भाग सुहाग ॥ १३

३

राग ईमन

मन न रहे मेरो व्रज मोहन पिय सों निधरक होरी खेले बिनु ।
दुरि-दुरि झुरि-झुरि कौं लौ रहौ री विधुना दीयौ है ऐसो दिनु ।
आपने रंगन भलैं भिजऊँगी जैसे हौं घरम में भिजई ही जु ।
आँनँदघन सनेही की घुमड़िनि जानी है सब तु ही जु ॥ १४

४

राग सारग

सां बाँके डफ बाजे है री, नँदनंदन रसिया के ।
अब की हांरी धूम मचैगी, गलिन-गलिन अरु नाके-नाके ।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैं मद छाके-छाके ।
आँनँदघन सों उघारि मिलौगी, अब न बनै मुँह ढाँके-ढाँके ॥ १५

५

रामकली

हांरी के दिनन मे तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री ।
तू जो नई दुलही नव-जोवन, रहि घर-बैठि मौन सिख मेरी ।
डगर-बगर और घाट बाट में कान्ह करत नित चरचा तेरी ।
जा दिन तोहिं लखै घनआँनँद ता दिन होइ कौन गत एरी ॥ १६

६

विहाग-तिताला

ए सखी तो हे बरजों तू नहीं मानति मेरी सीख ।
बरज रही बरजो नहीं मानति, घर-घर माँगति रूप भीख ।
चित चाहत हैं प्यारे के सरूप को अब कैसे मिलना होय देख ।
आँनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत नहीं करम रेख ॥ १७

७

खंवाती तिताला

अब सखी कैसे निकसौं बाहर मग रोकत टोकत ब्रजनार ।
ग्वाल बाल कान्ह अपने संग ले[1] मारत केसर पिचकार ।
डगर बिगर तिय चलन न पावै ऐसे ढीठि होरी के खिलार ।
आँनँदघन[2] ब्रज-बीथिन डोलत, छैला नंदकुमार ॥ १८

८

कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दइया, होरी खेलै कान्हइया ।
या मारग ह्वै कै हौं निकसी, मेरो छीन लियो दहिया दइया ।
सासरै जाऊँ तो सास रीसि है, पीहर जाऊँ खिजै मइया ।
इत डर उत डर भूल गरी, संग मोहन नाचौंगी ताथेइया ।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीज गई मेरी पाँवरिया ।
आँनँदघन को कैसै कै भीजै ओढ़ रहे कारी कामरिया ॥ १९

९

राग कान्हरो

मो सों होरी खेलन आयो

लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायो ।
डगर-डगर में, बगर-बगर में, सबहिन के मन भायो ।
आँनँदघन प्रभु कर दृग मीड़त हँसि-हँसि कंठ लगायो ॥ २०

१०

रामकली

होरी के मदमाते आये लागे हो मोहन मोहि सुहाये ।
चतुर खिलारिन बस करि पाय खेलि खेल सब रैनि जगाये ।

---

[1] दूसरा रूप है—'ग्वाल बाल सगकान्ह लै अपने'
[2] „ —आनँद रसिक

दृग अनुराग गुलाल भराये अंग अंग बहु रंग रचाये ।
अबीर कुंकुमा केसरि लैके चोवा की बहु कीच मचाये ।
जिहि जाने तिहि पकरि नचाये सर्वस फगुवा दे मुकराये ।
आँनँदघन रस बरसि सिराये भली करी हम ही पै छाये ॥ २१

११

राग भैरव

आए जू आए भोर भलेई, सब निसि जागे
द्रिग अनुरागे, पागे रंगत बोर ।
भले हीं आए विजन दुराऊँ चकित भये
नव कुसुम किसोर ।
आँनँद घन रस-बस की बतियाँ
छाजि रहे वाही ओर । २२
तें भले आए जोर ॥

१२

भाजि न जाइ आज यह मोहन ,
सब मिलि घेरौ री ।
अंजन आँजि माँडि मुख मरघट ,
फिरि मुख हेरौ री ।
गारी गाय गवाइ लाल कूँ ,
करि लो चेरौ री ।
आँनँदघन बदलो जिन चूकौ ,
भँडुवा टेरौ री ॥ २३

१३

राग केदारौ

पकरि बस कीने री नँदलाल ।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं[१] मसल गुलाल ।
चपल चलन को अति ही अरबरात छूटि न सके परे प्रेम के जाल ।
सूधे किये बंक ब्रजमोहन आँनँदघन रस ख्याल २४

[१] ओ.

गेय पद

१

जयत श्री ताल चौताल

सब ब्रज सुख समुद्र ह्वै आयो जो उपजो गोकुल चंद सुछंद ।
धुन गरज्यो अमोघ मंगल यह सुन दूर होत दुख दंद ।
हरपे द्रुम वेली नर नारी प्रेम पियूष मयूष अनंद ।
आँनँदघन बरसो सरसो नित सुख घन जसोदा को नंद ॥ २५

२

कल्याण वा हमीर

झुरमुट लाग्यौ ई रहत नँदरानी जू के आँगन
ब्रज की नवल बधू रँग भीनी
सुंदर स्याम चितै बस कीनी
आत कछुक मिस माँगन ।
जौं लौ सकत बढी सनेह की,
अँचरा बँध्यौ नेह सरसावन ।
दिन दूलह आँनँदघन पिय की
घर-घर भाँवरि बँध्यौ है
प्रेम करि काँगन ॥ २६

३

मलार

मेरी आँखिनै सुख देयबो करो रंग भरी जोरी ।
स्याम सुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी ।
यह सरूप यह जोवन यह रसीली बातें ।
यह बृंदावन यह जमुना ए दिन ए रातें ।[1]
इनको कौतुक देखि-देखि अपनो जीव जिवाऊँ ।
इनके गुन गाय-गाय इनहीं को रिझाऊँ ।

---

[1]इस गीत की भाषा खड़ी बोली के इतने निकट आगई है कि संदेह के लिये स्थान हो जाता है ।

आँनँदघन घुमड़ि सदा रस संपति सरसो ।
दंपति ही की मधुर केलि ऐसें ही दरसो ॥ २७

४

राग टौडी तिताला

ए मेरे मन नैनन रोम् रोम कृष्ण ही रम्यौ है ।
कहूँ बेचत कहूँ लेत गोपाल गोरस सो घरघर
फिरत बिकात जात कहूँ नीको नेह जम्यौ है ।
गोकुल प्रेम कीपैंठ सुहाई जहाँ जगजीवन ऐसो भ्रम्यौ है ।
आँनँदघन अचरज रस सिव सनकादिक सेष
संकर गिरजा सीस नम्यो है ॥ २८

गेय पद

१

खम्भाती तिताला

लाग रह्यो मन राधा वर सौं
और कहे कछु और उपर सौं ।
दिन रतियों अँखियों आगे मेरी
ठाढ़ो रहे कछु रूप सुघर सौं ।
लोक लाज कुल कान तजी आली
निठुर भए घर बार नगर सौं ।
आनँदघन प्रभु लाए नेहा
प्रेम रँगौंगी मैं गिरिधर वर सौं ॥२६

२

राग कल्याण

राधा री सुहागन राधे रानी
स्याम सुन्दर ब्रजराज लाडिली ताके बस अभिमानी ।
सोभा को सिर छत्र बिराजै वृंदावन राजधानी ।
जीत लियो ब्रजराज पपिहरा आनँदघन र-दानी ॥३०

३

मुलतानी धनाश्री चौताला

तुव तन मे सुगंध मलयागिरि सुबास बसे
तन मन सा पवन लहरे लेत ।
है सुजान सुंदर सुलच्छन नारि दरसन
आनँद कारन निकेत ॥३१[1]

---

[1]भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है। संदेह के लिये स्थान निकल
[illegible]ाता है।

४

सोरठि

लागी रट राधा-राधा नाम

नवल निकुंज पुंज बन हेरत नंद ढिठोना स्याम ।
कबहू मो न खोर साँकरी टेरत बोलत बाम ।
आँनँदघन बरसो मन-भावन घन बरसानो गाम ॥३२

५

देश सोरठ

राधे दे बृन्दावन बास ।

महा मधुर रस केलि माधुरी फुरे याही अनियास ।
हरी खरी सुख भरी निकुंजन नव नव सुखद बिलास ।
जमुना तीर ललित बंसी धुन अद्भुत अमी निवास ।
कृपा रमडी उमड़ी आँनँदघन बेगि पूरीए आस ॥३३

६

राग-भैरों

मन-बन तें बाहर जिन जाई ।

राधा हिलन-मिलन-सुख-स्यामहि, पुरबन इहै बनाई ॥
दिन हीं धरि राखत उर-अंतर, निस तौ निपट सहाई ।
तरु-तरु, लता-लता में बरसत भर्यौ सु दंपिति भाई ॥
याही मे भाँवरौ भर्यौ कर बिनमत हा-हा खाई ।
आँनँदघन सों चातक पन गहि रस लै प्यास बढ़ाई ॥३४

७

राग-टोड़ी

राधा, राधा दीसै स्यामै, घर राधा, बन राधा ।
चायन-भरि गायन लै निकसत, दुरि मिलवे के साधा ।
ब्रज बसि कैसें बने कुलीलन, लोक लाज गुरजन की बाधा ।
आँनँदघन चातक लौं जीवत रस बस प्रान समाधा ॥३५

८

राग-सोरठ

दुहत मन, गाय-दुहन के साथ ।
हाथ दोहनी देत लहैरुआ, धीरज रहत न हाथ ।
नई हिलग की चोप-चटक बस, चितवन ही मे भरत बाथ ।
ऑनंदघन यौ भिजवै, रिझवै खिरक मे गोकुल नाथ ॥३६

९

राग आसावरी

नंद-महर को किसोर छबीलौ, मेरे बगर नित आवै ।
मुरली मै रस-भेद भरै, बतियां सुनाइ रिझावै ।
मन अरबरात दौरि देखन कौं सास-ननद के त्रास तन तावै ।
ऑनँदघन हित प्रान पपीहा तरफरात रहै बीर, पीर को पावै ॥३७

१०

राग गौरी

दुरजन बाहर, गुरजन घर में ।
लाल, गर्यारें बोल सुनायौ, प्रान परे अरबर में ।
निपट अटपटी पीर सखी री, को पावै या मरमे
ऑनँदघन ब्रज-रस-झर लायौ, हां हीं विरहा झर मे ॥३८

११

राव टोडी

नंद महर के कान्ह अचगरे, मुरली-टेर सुनाइ ठगी हों ।
धरक धीर कैसे धों साधों सुर के सग लगी हों ।
मोहन मूरत ॲखियन आड़ी, याही ते निस-द्योस जगी हों ।
ऑनँदघन रीझन भरि भिजई चेटक-चटक दगी हों ॥३६

१२

राग कान्हरा

स्याम सनेह सगबगे सब ही रूप रंग मगे नैन ।
मिलि मिलि बिछुरि बिछुरि फिरि फिरि मिलि पाव चैन कुचैन ।

आँनँदघन झर लग्यो रहत है वृजवन रस बदवारि ।
कानन धूम मची री चहुँ दिसि कान्ह ही कान्ह पुकारि ॥४०

१३

राग-कल्याण

अँखियन लाग्यौ री गोपाल ।

जमुना तीर गई गागर लै भरि लाई जंजाल ।
औचक डीठ परयौ ब्रजमोहन, ठाढ़ौ उठिग-तमाल ।
चितवन में भिजई 'आँनँदघन', ए पनघट के हाल ॥४१

१४

राग-खमाच

लई कन्हैया ने हौं घेरी ।

खोर-साँकरी-माँझ साँझ में आइ गयो कितहू तें हेरी ।
कौरी-भरी औ धरी औचकां, इकली काहि सुनाऊँ टेरी ।
आँनँदघन घुरी सराबोर कर, पठई घर लों निपट लथेरी ॥४२

१५

राग-अडाना

अरी पनघटवा आँन अरै ।

अटपटी प्यास भर्‌यौ ब्रजमोहन पलकन ओक करै ।
रुचिर रचाइ, ललचाइ निहारै, मेरौउ धीर हरै ।
उधर, उधर भिजवै आँनँदघन चोपन लाइ झरै ।४३

१६

राग-षट्

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं गिरधारी ।

स्याम रूप नैन के अंजन, बनिक पै हों बारी ।
पल पल कोटि समै ज्यौ बीतत, लागत; दसौं दिसा अँधियारी ।
आँनँदघन रस-पान करन हित, चित चातक व्रतधारी ॥४४

१७

राग-ललित

स्याम सलौने सों दग अटके ।
रूप-रसासव छके न मॉनत, बहुत-भाँति मैं हट के ।
मोहू अपवस किये नचावत, गोहन मोंहन नागर नटके ।
आँनँदघन इनको सिख ऐसे जैसे तुस लै फटके ।४५

१८

राग-जंगला

मोहन सों नैना लागे घूँघट की सुधि नाहिं रही ।
चितवत चकित रहत इत-उतहीं, निस-दिन इकटक टेक गही ।
इनकी पीर न पावै कोऊ, अजन-रंजन एक वही ।
आँनँदघन हित तरसत बरसत, लोक-लाज, कुल कान वही ।४६

१९

राग-रामकली

लालची नैन हमारे, देखे बिन न रहैं ।
अपने से बरजत बहुतेरौ, ए तनकौ न गहै ।
मन हरि हाथ दियौ लै इनहीं, अटपट चोंप चहै ।
आँनँदघन रस-चसके बस भए, सब के बोल सहैं ।४७

२०

राग-मालव

आईयै आईयै, लालन, अंग संग रंग के
तरंग उपजेरी जब जब निसा जगाई ।
सब हीं को मनमथ, सब तिय जानति
नीके कै बस-रस आँनँदघन सौतिन गाजनी गाई ।

कुछ अतर से दूसरा रूप भी पाया जाता है—

आ आ आइए लालन अंग संग रंग के
तरंग उपजेरी, जब सब निसा जगाई ।

सब ही को मनमथ सों तीय जानत नीको कै
रस बस आँनँद सो तन गाजनी गाई ॥४८

२१

राग भैरव

सोवत नगर मे बोल्यौ को है बगर मे ।
इक डर है मोहि सासु-ननद कौ, अलिआँ-गलियों डगर मे ।
प्रात-समे उठे नँदनंदन, बिरहा भींजत झर मे ।
आँनँदघन ब्रज उठै सबेरैं, सासु-ननद के डर मे ।४६

२२

राग-कान्हरा

ये जोबना ऐसे काम करै, अपनी अरन अरै ।
कित कौ छैल-छबीलौ मोहन, मेरी डीठ परै ।
मन मिल गयौ मिलत ही अँखियन, आई घूम घरै ।
अपनी-सों बरजी बहुतेरी, नेक न धीर धरै ।
चलत चवाब चाव-चित बाढ़त, क्यों हित-टेक टरै ।
उघर घुरोंगी आँनँदघन सों अब सब डार डरै ॥५०

२३

टोड़ी एकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे
तिहारी भँवर की सी रीत ।
जित सुगंध पावत हौ तित धावत हौ
तुम गरज परे के मीत ।
आँनँदघन ब्रजमोहन प्यारे,
ठौर ठौर के रस चाखत हौ
कैसे करें परतीत ॥५१

२४

सोरठ एक ताल

प्रीत करी सो मैं जानीं, रे मोहन ।
दे विस्वास गयो तज, मथुरा रति कुब्जा सों मानीं
रे मोहन ।
कपट भरो कारो तन तेरो कपट भरी सब बानी
रे मोहन ।
आनँदघन हित चित की बातें जानत राधा रानी
रे मोहन ॥१२

२५

पूर्वी ख्याल इकताला

मेरौ मन मेरे हाथ नहीं कहा करिए री बीर ।
ब्रजमोहन-बिछुरन की सखी री निपट अटपटी पीर ।
कैसे धीरज धरि हौं सखी नैनन भरि भरि आवत नीर ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी प्रान-पपीहा अधीर ॥१३

२६

दैया हम यों ही करी पहिचानि निपट निठुर तिहारी बानि ।
ब्रजमोहन ह्वै मोह्है नहिं कहुँ कहा जानौ अकुलानि ।
हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रचो विधिना यह आनि ।
आनँदघन ह्वै प्यासन मारत प्रान पपीहन जानि ॥१४

२७

नैनन देखबे की बानि ।
बरजि रही बरज्यो नहि मानैं छूट गई कुल-कानि ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहिचानि ॥१५

२८

राग-पहाड़ी

मोहि जगाइ, जगाइ, जागे-री, वा के जिय की न जानिऐं बात ।
इक टक नैन लगाइ लखें हों लजाइ रहों, हो नकवानी भई दुहि-गात ।

तऊ नई-नई रुचि छिन-छिन, इनईं भाँतिन जु होत परभात ।
अति गति कहि न परत 'आँनँदघन' इत आवत उत जात ॥ ५६

२९

राग-सारंग

लागी है रे निरमोहिया, तोही सों जिय की लाग ।
घर में बैठि कहाँ लों साधों, ये बिरहा बैराग ।
अब तौ सब डर डारि सदाँ सँग फिरि होंगी बन-बाग ।
प्रान-पपीहन कों आँनँदघन उचित न क्यों हूँ त्याग ॥ ५७

३०

राग-सारंग

एक ही बगर में बसंत बनमाली पै मेरी आली !
आँख लों-आँख न दीखत ।
हित-जताइ चित कठिन कियौ री, अधिक—
बधिक हू ते प्रान परेखन पीसत ।
निकट आइ मन-भायौ करत किन दूरते
क्यों बिष सरन कसीसत ।
आँनँदघन सब बिध वे सुखी रहौ,
निस दिन जात असीसत ॥ ५८

३१

राग-जैजैवंती

तुम सों एक बात बूझत हों साँची कहौ ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँत रहौ ।
उघरे हूँ अंतर पट राखत, अपने गुनन गहौ ।
चोंपनि झूम-झूम आँनँदघन, नित नए नेह नहौ ॥ ५९

३२

राग-पूरवी

निपट निठुर तिहारी बानि, दैया हम यों ही करी पहिचानि ।
ब्रजमोहन मोहे न परे कहूँ कहा जानों अकुलानि ।

हम भोरी तुम चतुर सयाने यही लिखी विधिना ने आनि ।
आनँदघन पे प्यासनि मारत प्रान पपीहनि जानि ॥ ६०

३३

राग धना श्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत
जब लागी तब किनहु न जानी अब कछु और रीत ।
चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत ।
निस दिन ध्यावत वा मूरत कौ आनँदघन सै भीत ॥ ६१

३४

राग-कल्याण

काहू-काहू की रट लागी मेरी रसना के ।
जब तें बनवारी बन गये तब तें, ए अँखियो इकटक उतही कों झाँके ।
मुरली-धुन सुनने की साध दुसाधन, प्रान बसेरौ कानन घों के ।
वे आनँदघन इत चित-चातक, को जानें कितकों धावें औ आवे ।
हैं अप मारग सूधे चों के । ६२

३५

राग बिलावल

सब जग काहू काहु हि दीसै, अब मेरी स्याम रँग रँगी डीठ ।
रूप उजारौ सनमुख डोलै, लाज रही दै पीठ ।
कैसौ घूँघट, कहत कौन सों, क्यों न करौ सुनि सुघर बसीठ ।
उघर परी आनँदघन घुमड़न उतरन दीजै नीठ ॥ ६३

३६

मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई ।
घटा उमडि घुमडि झूमि झूमि भूमि पर आई ।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाँहीं साँझ भोर
झींगुर झिगार सुहाई ॥

तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी
पिय बिन जिय अति अकुलाई ।
आनँदघन लखि घनस्याम ।
रूप नैनन रह्यौ है समाई ॥ ६४

३७

· मालकोस

लहैकन लागी-री बसंत बहार
मनों बनवारी लाग्यौ बैहकन ।
न जानों जब कहा करेंगे
लगें पलास द्रुम डैहकन ॥
मदन-भरि केकी कूक काढ़त बरन-बरन
द्रुम पुहुप लागे म्हैकन ।
आनँदघन तुम कहाँ बिरम रहे ।
दूत कोकिल लागी कुहुकन ॥ ६५

३८

राग-भैरव

सब मिल आवो गावो बजावो मृदंग
आज हमारे लाल जू की बरस गाँठ ।
कनक थार भर भर मुक्ताफल ले न्योछावर करवावो ।
नव नव पल्लव बंदन माला द्वार द्वार बंधावन ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लग्यो सुजस सुहावन ॥ ६६

३९

राग कान्हरो

श्री वृंदावन महिमा को बरनि सकै
जाहि जानत एक ही मोहन ।
जा के पत्र पुष्प फल दल मे दरसति
राधा मूरति सो सुख सम उत जाके जोहन ।

श्री पद परस सरस हित नित आँनँदमय
भागि नि काई गोंहन ।
दंपति चातक उभय आँनँदघन करत मनोरथ दोंहन ॥ ६७

४०

राग-भूपाली कल्याणी

ढरकि ढिग आवौ लाल, ढरारे !
दूर भजे हूँ भजत भाँवते, क्यों हित-बोल बिसारे ।
मन उरझौ है सुन गुन गन गोंहन, मोहन गुनन तिहारे ।
अब आँनँदघन सुरस सींचिए, चातक प्रान बिचारे ॥ ६८

४१

राग-परज

मै कैसें करों, कैसें मरों प्यारे ब्रजचंद बिना ।
रैंन अँधेरी बिरह सतावत, कल परै नहिं एकौ दिना ।
क्यों हूँ, क्यों हूँ होत सवारौ, बाट निहारों सब दिना ।
आँनँदघन पिय भूले हूँ लई, प्रान पपीहन की सुधि ना ॥ ६९

४२

राग-मालव

पिय बिन नाहीं बनें री मोको एक छिन, पल ।
उठि चलि बेगि मिलि सँग लै मोकों,
पल-पल भए बरष-समॉन, अब रोइ भरों जल-थल ।
वे पीय जीय जीय से नाही प्रेम गली मे गई चल ।
बिरह के छल 'आँनँदघन' प्रभु बिन,
तन तलफत औ हिय उढि लेत चल-दल ॥ ७०

४३

ऐ री हूँ तो जाऊँगी री
अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय परूँगी ।
सास ननद की कानि न मानूं देवर गारि सहूँगी ।
आँनँदघन ब्रज जीवन प्यारे चरनन लिपट रहूँगी ॥ ७१

४४

राग सोरठ

मेरे मन की न जाने-री, यै मोहन सोहन-स्याम सखी ।
कैसें करो, कहौं अब कासों, को अब मानें री ।
उर अरि रही रसीली-मूरत, प्रानन छौंने-री ।
चातक रट लागी 'ऑनँदघन' पॉने-पॉने-री ॥ ७२

४५

राग-खमाच

बरजत-बरजत इन अँखियन ब्रजमोहन-मुख चाह्यौ ।
धीरज-धन दै हाथ पराए, बिरहा बिसह बिसाह्यौ ॥
उनहि कहा कहि दोष दीजिऐ, इनही उरझि न नेह निवाह्यौ ।
मन-मोहन लगाई ऑनँदघन तनहूँ बन लै गाह्यौ ॥ ७३

४६

राग-गौरी

सु-दिन ह्वै है जब भेटि हौ स्याम ।
तन की तपत-बिपत टरि जै है, पै है मन बिस्राम ।
बहुत-भाँति के सुखन सींचि है, रस सूरत ब्रज-जीवन नाम ।
ऑनँदघन हि उँमड़-घुँमड अति हरि हैं बिरहा-घाम । ७४

४७

राग कान्हरौ

कहि सुघर सनेही स्यांम मिलेंगे कब री ।
हेली मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री ॥
चितवनि में करि गए ठगोरी इत ह्वै निकसे जब री ।
कहा करों कछु बस नहीं मेरों इत गुरुजन की दब री
लखि पावेंगे कोउ, बात मरम की जानि जाहिंगे सब री ।
ऑनँदघन सों प्रान पपीहनि लै मिलि काहू टब री ॥

४८

राग विहाग

बिछुरे कौ दुख जानत नाहीं स्याम ।
बीच दिये ही मिलत बिसासी, ए कपटिन के काम ।
हम बौरी बे काज बिकाईं, निज सरबस दै उलटे दाम ।
निधरक छाइ रहे आँनँदघन हम बिलखत निजधाम ॥७६

४९

राग-रामकली

तुमको जे सुमरैं, सुमर जीवत हैं, तिनके तुम प्रान जीवन हौ स्याम ।
तिहारे गुनन सों सुरत पोह टोह, विरह खोंप सींवत हैं ।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेक न छीवत है ।
आँनँदघन ए प्रान पपीहा एक आस बस प्यास न पीवत है ॥७७

५०

राग-खेमटा

लोचन स्वादी हैं छवि-रस के ।
देखि-देखि पिय-मुख सुख पावत, त्यागी पलक-परस के ।
ताही मे मुसक्यानि-आसब छकि, नाहिं रहे मो बस के ।
क्यों कुल कॉनि करें आँनँदघन जिन हियरे ए चस के ॥७८

५१

राग-जंगला

सनमुख चाँहन कों चित चाँहत, लाज निगोड़ी रोकत आँन ।
मोहन-रूप-माधुरी अतसै, पॉन करन की नैनन बॉन ।
घूँघट ओट करन कों सजनी, उपजत जिय अलसॉन ।
रीझन- भिजए, प्रान-पपीहा आँनँदघन रसखॉन ॥७९

५२

राग काफी

अब तौ जानी है जू जानी ।
मेरी स्यारी लाग ननदिया ! दूरि कितहूँ पैहचानी ।

चौकस भई रहति है बैरिनि, ज्यों बन-निकसि सुपानी ।
वा के उर सूखत आनँदघन इत कै झर नकवानी ॥८०

५३

भैरवी

सुनि हो ब्रज बासी, तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी ।
तुम ही सौं लागि रह्यो है, सब ही तें भयौ उदासी ।
ऐसी भाँति मारियत-भरियत नित एक गाउँ बसि भए प्रवासी ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन दैया, निपट बिसासी ॥८१

५४

राग-खमाच

मोहि तुम-ही-तुम दीसत हौ स्याम उजारे नैन के तारे ।
इतने पै न दीसत हौ तौ प्रान परेखन पीसत हौ ।
तुम हीं जो दीस परी सो दीसौ पन-हीन खीसत है ।
आनँदघन पिय न्यौत पपीहन प्यास परीसत हौ ॥८२

५५

राग-बिलावल

वेगि लै आव री लाल-बिहारी प्रान-पिया कौं ।
कल मलात उनके देखन कौं, राखिलै विकल-जिया कौं ।
हा-हा करत हौं, पाँयन परत हौं, चेरी मान अधीन तिया कौ ।
आनँदघनहिं मिले सियरौ करि, बिरहा-जरन-हिया कौं ॥८३

५६

राग-कान्हरा

उन्हें, काहे मेरी सी चटपटी है कान्ह, सदाँ के नीरस के ।
वे रस लोभी आहि पाहुने, को जाने कै घर के ॥
अपनी गौं गठि गौंहन लावत, ब्रज मोहन हैं भरे छर बर के ।
आनँदघन कछू अधीनन कौं तन, कितहूँ धाइ दे झर के ॥८४

५७

राग-दादरा

तेरी सूरत देखिवे कों मेरे लालची नैन भए।
तरसत, बरसत रहत रैन-दिन, ऐसी चाँह छुए।
ऐ हो कान्ह, कहा तैं कीन्ही, हु जू दिखाइ न दींनी अए।
आँनँदघन पिया प्रान-पपीहा भरोसे-ही गिधए ॥८५

५८

राग-ललित

तुम कों टेरत हों कहाँ न

श्री बृन्दावन-ओर जात है, रूप-रास की खॉन ॥
टेरन के लगि हेरन लागी, हेरन लागि-हिरॉन।
आँनँदघन रस मत्त पपैया ज्यों जल बिन मुरझाँन ॥८६

दीपिका

काव्य प्रशस्ति

१— तीछन = तीक्ष्ण। ईछन-वान = नयन-बाण। पैनी दसा = तेज धार आने की अवस्था, अनुभूति की तीव्रतम अवस्था। पानिप = चमकदार। राधा के रूप के प्रभाव से यह सवैया सराबोर है।

२—गोइ कै = छिपा कर, कोरे पाडित्य का कोई महत्व नही। जीवन मे अनुभूति की सत्यता से वाणी को बल मिलता है। इसी बात पर जोर देते हुए कबीर कहते है 'ढाई अच्छर प्रेम का पढै सो पडित होइ।'

३—कोट = किला, करोडो विषय वासनाओ के किले की ओट मे आ जाने वाले सच्चे प्रेम की चोटो से कब प्रभावित हो पाते है? वे अपने ही को सब कुछ मानने वाले हठवादी कब किसी सच्चे प्रेमी की प्रीति का विश्वास कर सकते है। ऐसे सींग पूंछ हीन पशुओ को घनआनँद की कविता कब सुहा सकती है।

५—जग की कविताई के धोखे रहें, धोखा = खेतो मे चिडियाओ, जानवरो को डराने के लिये खडा किया गया पुतला, जग की कविताई = लौकिक विषय वासनाओ को लेकर चलने वाली कविता खेत मे खडे धोखे के पुतलो की तरह निर्जीव, सारहीन है। लोग इस सुजान (चतुर कृष्ण और राधा) के प्रेम से परिपूर्ण पवित्र कविता को सुन कर प्रभावित होते है, किंतु उन्हे धोखा होता है कि यह लौकिक वासनामय प्रेम का ही चित्रण है। अनुभूति की कमी से ही वे धोखा खाते है। सच्चे प्रेम की पीर से जो भिद गया है वह कभी धोखे मे नहीं आ सकता, किंतु विषय वासनाओ में लीन रहने वाले, इस पीर से बिधने के लिये उद्यत ही कब होते है, उन्हे तो झिझक होती है।

६—घन जी के = आनद घन कृष्ण के जिन्हे घनानद ने बनाया है।

कृपा कन्द

१—बानी के बिलास बरसावे = प्रेम-भावना से हृदय भर जाता है तो वाणी के द्वारा कविता की झड़ी लगने लगती है।

५—बोहित = जहाज, नाव, बेड़ा।

६—मादिक = मतवाले, प्रेम रग चढाने वाले।

७—परसै नहिं = स्पर्श नही किया, अनुभव नहीं किया

विनय तथा उपालंभ

जसोदा=नंद की पत्नी, यश देने वाली। जान=चतुर, मर्मज्ञ, प्यारा—हित=प्रेम, लिये। मेरो मनोरथ हू वहिए अरु है मो मनोरथ पूरन कारी=हे मनोरथ (इच्छा) पूर्ण करने वाले कृष्ण मेरे मन रूपी रथ का भी अवाध (अप्रतिहत) गति से संचालन कीजिये (जैसे कि मोह में पड़े अर्जुन का किया था), वह ही कृष्ण मेरा मनोरथ है और वह ही उसे पूर्ण करने वाला है अर्थात् तत्वतः जो वह है वही मेरे हृदय में भी तो है।

३ गमैये=नष्ट कीजिये, प्रभावहीन, बेसुध कीजिये।

दाँवरी=रस्सी, जेवरी.।

५, रिगौंवनि=रिझाना, घूम-घूम के मन पर प्रभाव करना।

६ खटके=लालसा भरा दुःख, अवांछनीय अपूर्ण वेदना।

६,१०,११,४५ वसि एकहि वास विसास करौं, तरसावत हौं वसि एकहि गाँव मैं, वसि एकहि वारा विदेस भयौं=हृदय में ही प्रेमी घर किये है किंतु आँखें उसे देख नहीं पाती हैं इसलिये समीप होने पर भी प्रवासी का सा अंतर बना हुआ है। यह भावना ही घनानद की कविता का प्राण है क्योंकि उनको उलझन में डाल कर विरह से विकल कर देने वाली यही समस्या है। निरजनी हरिदास ने इस भावना से अधीर होकर एक दिन कहा था—

> निकट वसो पै दूर रहो
>
> एक मंदिर माँहि माधवे।
>
> कै मिलिहौ कै तन तजौं
>
> अब, मोहे जीण नहि माधवे।

विरह की इस विकलता के दर्शन जब विद्यापति की कविता में होने लगते है तव उन्हें वहुत से लोग रहस्यवादी कवि समझने लगते है। घनानद इस भावना की प्रधानता के कारण वास्तविक रूप में मीरा की साधना क्षेत्र के कवि है। सगुण और निर्गुण भक्ति के बीच वाले कवियो मे गिने जायेंगे। शुद्ध सगुण भक्ति के अंतर्गत न मीरा आवेगी न घनानंद। प्रेममार्गी सूफी कवियो को इस श्रेणी में लाया जा सकता है।

वृजभूमि

२—आरति जगी है=उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न हुई है, लौ लगी है।

१०—सिहत=तरसते है, प्रशसा करते है। स्याम के स्वरूप का निर्धारण जब संभव हो सकेगा तभी राधा के अगाध प्रेम का भी वर्णन शक्य हो जावेगा।

किंतु श्याम के स्वरूप का पता पा जाना जिस प्रकार असभव ही है उसी भाँति राधा के अगाध प्रेम की थाह पाना भी कठिन ही है।

१२—वृंदावन और स्याम का अभिन्न संबंध है। स्याम के स्वरूप का वास्तविक पता जिसे चल गया वह वृदावन की महानता भी समझ जावेगा, जिस ने व्रजभूमि के महत्व को समझ लिया है उसकी समझ मे श्याम का स्वरूप आते देर नहीं लगती।

जन्मोत्सव

३—ठाँ=गाँव, स्थल, जगह, दिशा।
४—गरयारनि=गलियो में, वीथियो मे, बगड़ो मे, गरयारे=उद्धत, प्रवल, औसर=अवसर, मौका, समय।

वेणुनाद

१ मतौ=मन्त्रणा, सलाह। ओप=चमक, कांति।

३ समाज, कुल, परिवार की मर्यादा का खयाल शरीर को घर मे ही रहने के लिए वाध्य कर देता है, किन्तु मन कृष्ण की बाँसुरी के साथ वन-वन फिरने चला जाता है।

४ गिलै=निगलना, खाना, नष्ट करना।

बाँसुरी की ध्वनि का प्रभाव चराचर पर दिखलाने के लिए गोपिका कहती है कि वशी-ध्वनि सुन कर ही जमुना रुक गई है, (उसका प्रवाह थम गया है)। ध्वनित यह किया कि जल पर भी जब ऐसा प्रभाव उस वेणु-नाद का हो रहा है तो मानव हृदयो की तो गति ही क्या होगी!

५ हरिवौइ करै कछु वैन=कुछ न कुछ वैन (वचन) कृष्ण के मुख से हरण कराती ही रहती है अर्थात् कृष्ण कोई न कोई तान गाते ही जाते है।

हेली=हे आली, हे सखी।

८, १०, जब कोई मधुर ध्वनि हृदय मे गहरा प्रभाव उत्पन्न कर देती है तो वस्तु के अभाव में भी प्रभाव की स्मृति बनी रहती है। कल्पना के सम्मुख, यह स्मृति शब्द ही की नहीं, रूप, रस, गध, आदि की भी होती है यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और अपनी अद्भुत आभास दिलाने की शक्ति के कारण भ्रम उत्पन्न कर भावना को भी तीव्र कर देती है, इसलिए काव्य का भी तथ्य वह बन जाती है।

रूप माधुरी

जलजावलि=मोतियो की लडी, कमलो की लड़ी। धर=धरती। चौपनि=चाव मे, ढग से, ढब से। फवी=जच रही है। भावती=प्रेमिका, नायिका। मैमंत=मदमस्त, नशीली, रिझानेवाली। चेटक=जादू भरी, प्रभावशाली, रमणीय।

सौंदर्य-प्रभाव

नीमा = under-garment । लोना = लावण्ययुक्त, नमकीन, शोभन । गौरी = राग विशेष । ढौरो सौं = ढोरों सहित, ढग से । ओप = आभा, चमक, कांति । जकौं = चकित थकित रह जाता हूँ । लकुट = लाठी, ग्वाले की लाठी । आसव = सार, (शराव की भाँति का द्रव पदार्थ) फूलों के आसव की साहित्य में वडी प्रशसा हुई है—'पुष्पासवा घूर्णित नेत्र शोभी'—'कुमारसंभव' ।१४ सुवल = कृष्ण का सखा, इस कवित्त मैं सरलता, सौंदर्य-प्रभाव तथा सात्विक-प्रेम का सजीव चित्रण किया गया है । न जाने क्यों हृदय की ओर देखकर कुछ कह सी देती है, इतनी भोली है कि सिर में ओढनी तक सलीके से नहीं रख जानती । अथवा—इतनी चतुर है कि हृदय के भावों को क्रिया व्यापारों द्वारा व्यक्त कर देती है—आँचर को उलट कर सिर मे ढालकर न जाने क्यों फिर हृदय की ओर देखने लगती है । सकेतो से सव कुछ कवि ने व्यक्त किया है । ऐसे चित्र सुन्दर ढग से खीचना विद्यापति की निजी विशेषता है ।

दानलीला

गैल = गली, तग रास्ता । अरैल = अडनेवाला । तए = तप्त, गरम, भस्म करनेवाले तचे हुए । अँचै = पीकर ।

फाग

पारतु = डालता है, फेकता है । पारना शब्द फेकने और सकने के अर्थ मे विद्यापति, जायसी, कवीर, तुलसी आदि की रचनाओं मे भी प्रयुक्त हुआ है ।

दामिनीनि = विजलियों के । व्रजभाषा मे 'क' संज्ञा शब्द के अत मे जव लगता है तव वहुवचन का वोधक प्राय. होता है । किंतु जव शब्द शुद्ध वहुवचन मे न होकर विभक्ति युक्त वहुवचन मे होता है· तव 'न' का रूप या तो 'न्ह' हो जाता है या 'नि' । जैसे फूल शब्द एक वचन है, फूलन का अर्थ होगा वहुत से फूल । किन्तु फूलनि का अर्थ होगा फूलों को । 'छवि फूलन की' = सौदर्य के फूलों की । प्राननि बसत = प्रानो मे वसते हो । किन्तु घनानद अथवा अन्य व्रजभाषा के कवियों के प्रयोग सर्वत्र इस नियम की कडी पावन्दी करते नहीं दिखलाई देते ।

विरहा-फाग

सकेलि = बटोर कर, सँभालकर । मगरि = छोकरी, । चाँचरि = फाग, अथवा वसत मे नृत्य के साथ सामूहिक गीत गाये जाते है, इन्हें चाँचरि या चाँछरि (चाँछड) कहते हैं ।

गोरिनि = बनिताएँ, लावण्यमयी युवतियाँ । सोंधा = सुगधित द्रव्य, लेप ।

गोपी प्रेम

दहैडी = दही की मटकी । जनातु = दर्शाती है, व्यक्त करती है ।

उन रातिन की=संयोग की रातो की, उन रातो की जब रास आदि अनेक लीलाओ मे दिन, प्रिय के साथ सुख से बीत रहे थे।

वई=वोई

हे=थे। वजमारे=वज्र मारेकी, खीज अथवा चिढ से जब किसी का नाम भी लेने का जी नहीं करता, यदि प्रसग ऐसे व्यक्ति का आ जाता है तो झौसे, मुँहजले, दाढ़ीजार आदि शब्द जैसे प्रयोग में लाये जाते है, वैसे ही यहाँ वजमारे शब्द का प्रयोग हुआ है।

कलापी=कला को जिसने पी लिया है, मोर(मयूर)। गसत हौ=ग्रसते हो, खाते हो, पकड़ते हो, वेहोश करते हो। लसत हौं=शोभा पाते हो।

अनत=अन्यत्र (अएाथ—अएथ), और कहीं। तमी=रात्रि, अधकारपूर्ण, निराशा के समान अँधेरी जो रात है।

भनौ=(भए—भन) कहो।

झूठ की सचाई छाक्यो, त्यो हित कचाई पाक्यो=वह प्रेम को कच्चा बनाने (तोड़ने) मे वड़ा पक्का (दक्ष, निपुण) हैं। सचापन यदि वह निभाता है तो झूठी विश्वास की बातों के साथ। प्रेम मे पक्कापन उसने जाना ही नहीं है। बातो को सच्चा कर दिखलाने में वह सच्चा नहीं है, उनको झूठी कर दिखलाने मे अवश्य सच्चा है।

प्रेम-पत्रिका

हम भरें=जो कुछ विपत्ति आवे हम पर आवे, हम ही उन्हे झेलें, सहें। सरक=व्याप्त होने होने वाली, अग-अग में फैलने वाली तीव्र पीड़ा। पीड़ा सारे शरीर मे व्याप्त रहने पर भी कभी उसकी प्रबलता किसी विशेष स्थान पर हो जाती है और कुछ ही समय मे वह दूसरे स्थान पर सी पहुँची जान पड़ती है। उस मे एक प्रकार की धड़कन और गतिशीलता का अनुभव व्यक्ति को होता है। ऐसी पीड़ा सरक (सड़क अथवा चड़क) कहलाती है।

विरह-निवेदन

अरसाहु न=रसहीन, रूखे न होओ, कुम्हलाओ मत, अप्रसन्न न होओ।

मीचु (मृत्यु=मृ+ऋ+त्यु , मृ+इ+च्यु+मिच्यु—मीचु)=मौत। दुहेली (दुखेली)=दुःख वाली, दुःखदाई। हित=प्रेम, हितू=प्रेमी। उमाहै= पिघलता, द्रवित होता, उत्साह दिखाता।

गति लैनि=नृत्य करते-करते घूम जाना। रासधारियों के नृत्य में ऐसा परिवर्तन एक साधारण सी बात है। साधारण अवस्था में चेतना सब दिशाओं मे फैली रहती है, किन्तु मनमोहक दृश्य को देख कर, सुंदर स्वरों को सुन कर मनुष्य की तन्मयत

केन्द्रीभूत हो जाती है। एक प्रकार की गतिहीनता उस ऊँची दशा में अंगो में आ जाती है। यही गति का हरण करना अथवा लेना है। अपने सुरीले स्वरों से मानो इंद्रियों की गति ले ली है वे अब वहिमु'खी न रह कर अतमु'खी हो गई है, स्वर में लीन हो गई है। नृत्य का भी यही प्रभाव है।

लहा=लाभ। परजन्य=बादल, मेघ, दूसरे के लिये। परसौ=स्पर्श करो, छूओ, जानो, समझो, पहिचानो। कौधनि=चमक। थ्यावस=धैर्य। दौ=दव, ज्वाला। सुलगी=अच्छी तरह लगी, चैतन्य हुई, प्रज्वलित हुई, बली।

अनखि=अप्रसन्न होकर। नेरी=निकट, नजदीक। रोर=रव, शब्द, पुकार। सवेरी=शीघ्र। उनयो=घुमड़ कर घिर आया, झुका। लित=लिप्त, लीन।

वियोग वेली

इस छद के करुण चित्रण ने भारतेन्दु को इतना मुग्ध किया था कि उन्होंने इसी की प्रेरणा पर 'दशरथ-विलाप' लिखा। हरिश्चद्र तथा 'रत्नाकर' पर घनानद की गहरी छाप है। उनकी अनेक रचनाएँ घनानंद की कविताओं से प्रभावित है। हरिश्चन्द्र के कई कवित्त और सवैये ऐसे है जिनमें यदि नाम भर को स्थानांतरित कर दिया जाय तो पहचानना कठिन हो जायगा कि ये भारतेन्दु के है अथवा नही।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	आखिरी से पहली	१७९६	१७६६ संवत् मे
६	१६	सब का लेख	सब को लेखा
११	पहली	४१६ ई०	१७६४ ई०
,,	,,	१८०३ ई०	१८२३ ई०
,,	१७	१७३४	१७३६ ई०
,,	२७	सकत्ती	सकती
१३	९	उपमान	उपनाम
२८	फुटनोट १	वागे	बागो
,,	,,	हुस्न	हुश्न
३७	६	मुहावरा	मुहावरो
५८	२१	पॅखुड़िया	पॅखुड़ियाँ
६३	११	रूप मे ही	रूप मे नहीं
८१	१७	कमर्एय	कर्मएय
८१	२१	मूतिमान	मूर्तिमान
८८	दूसरा छुद	बषानैलि षाइयै	बषानै लिषाइयै
	तीसरा	आ ही	आप ही
	,,	विच्छुन	विचच्छुन
६७	छुद आठवाँ	मणि	मनि
६८	तीसरी	निरघार	निरधार
११६	७वीं पंक्ति	पुज	पुंज
	८वाँ छंद	घन की घमंड	घन की घुमड
		बूड़ि जात है	बूड़ि जाति है।
१२०	छद ५	षहार	पहार
१२३	पाँचवीं	असीम सदा	असीस सदा
	६	जबै	जबै
	अतिम नीचे से छठी	उन यों रहौ	उनयो रहै
		जगम मै	जगत मैं